कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान उज्जैन एवं तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़ द्वारा आयोजित

निजात्मकेलि शिखर शिविर के अवसर पर प्रकाशित

सिद्धपरमेष्ठी विधान

– राजमल पवैया

श्री सिद्धपरमेष्ठी विधान

लेखक :
राजमल पवैया

प्रकाशन सहयोग
श्रीमती कणिका धर्मपत्नी
श्री प्रवीणकुमारजी लुहाड़िया, दिल्ली

प्रकाशक :
कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान
उज्जैन (मध्यप्रदेश)

प्रकाशकीय

आत्महित के निमित्तभूत **श्री सिद्धपरमेष्ठी विधान** को प्रकाशित करते हुए कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है।

कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन गुरुदेवश्री द्वारा प्रकाशित तत्त्वज्ञान को जन-जन के समीप तक पहुँचाने हेतु कृत संकल्पित है।

पूज्य गुरुदेवश्री के मङ्गल प्रभावना उदय में सैंकड़ों जिन मंदिरों एवं कई भव्य सङ्कुलों का निर्माण हुआ है, जो उनके द्वारा प्रसारित भगवान महावीर के जीवमात्र को हितकारी आध्यात्मिक सन्देशों के व्यापक प्रचार-प्रसार में संलग्न है।

कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान भी पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के प्रभावना उदयरूपी वटवृक्ष की एक शाखा है। अत्यन्त अल्पकाल में इस संस्था ने अनेक तत्त्वप्रचारात्मक गतिविधियों से सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज के हृदय में अपना अमिट प्रभाव स्थापित किया है।

जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार भारतवर्ष में प्रवचन, विधान, आध्यात्मिक व सैद्धान्तिक ग्रन्थों के द्वारा होता रहे – इसी भावना के साथ कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन इस पुष्प को आपश्री के सम्मुख समर्पित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है।

प्रस्तुत कृति को प्रकाशित करने में श्रीमती कणिका धर्मपत्नी श्री **प्रवीणकुमारजी** लुहाड़िया, दिल्ली का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है, अतः हम **उनके भी आभारी हैं।**

प्रदीप झाँझरी
मैनेजिंग ट्रस्टी,
कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन

प्रथम संस्करण : 2 हजार
(20 सितम्बर से 27 सितम्बर 09 तक आयोजित सम्मेदशिखर शिविर के अवसर पर)

मुद्रक : देशना कम्प्यूटर्स
बी-179, मंगलमार्ग, बापूनगर, जयपुर
मो. 9928517346

ॐ

श्री सिद्धपरमेष्ठी विधान

(श्री कर्मदहन विधान)

मंगलाचरण

(अनुष्टुप)

मंगलं सिद्धपरमेष्ठी मंगलं तीर्थंकरम्।
मंगलं शुद्धचैतन्यं आत्मधर्मोऽस्तु मंगलम्॥
मंगलं शुद्धज्ञानाय तत्त्वनिर्णय मंगलम्।
मंगलं सर्वसर्वज्ञ आत्मनिर्णय मंगलम्॥

(दोहा)

जयति पंचपरमेष्ठी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
जय जगदम्बे दिव्यध्वनि, श्री जिनधर्म प्रणाम॥
माँ जिनवाणी की कृपा, मुझे मिले दिन-रात।
भेदज्ञान बल प्राप्त कर, पाऊँ समकित प्राप्त॥

(चामर)

वीतराग श्री जिनेन्द्र ज्ञानरूप मंगलम्।
गणधरादि सर्व साधु ध्यानरूप मंगलम्॥
आत्मधर्म विश्वधर्म सार्वधर्म मंगलम्।
वस्तु का स्वभाव ही अनाद्यनंत मंगलम्॥
कर्म नाश की सुविधि कर्म वसु क्षयकरम्।
सर्व श्री सिद्ध भगवन्त प्रभु मंगलम्॥

पीठिका

(हरिगीतिका)

कर्मक्षय की सुविधिदर्शक सिद्धपरमेष्ठी विधान।
सुविधि होते ही क्रियान्वित कर्म का मिटता निशान॥
कर्म जड़ पुद्गल अचेतन भवदुःखों के मूल हैं।
शुद्ध निज चैतन्य के तो ये महा-प्रतिकूल हैं॥
इन्हीं के क्षय हेतु मैं अब शरण में आया प्रभो।
प्रकृति इनकी नाश करने को तुम्हें ध्याया विभो॥
मनुज भव उत्तम मिला है मिली जिनवर भक्ति भी।
मिला समकित का सुअवसर तथा संयम शक्ति भी॥
ध्यान ज्वाला में करूँगा दहन आठों कर्म को।
सिद्ध पद निष्कर्म लूँगा प्राप्त कर सद्धर्म को॥
दो मुझे आशीष पावन पूज्य सिद्ध महा-महान।
सिद्धपरमेष्ठी विधान करूँ सु पाऊँ आत्मभान॥

(हरिगीत)

नाश ज्ञानावरण ज्ञान अनन्त निज प्रकटाऊँगा।
नाश दर्शन-आवरण सुअनन्त दर्शन पाऊँगा॥
वेदनीय विनाश अव्याबाध सुख मैं पाऊँगा।
मोहनीय विनाश कर मैं वीर्यगुण प्रकटाऊँगा॥
आयुकर्म विनाश गुण अवगाहनत्व सुपाऊँगा।
नामकर्म विनाश गुण अगुरुलघुत्व सुपाऊँगा॥
गोत्रकर्म विनाश गुण सूक्ष्मत्व हे प्रभु पाऊँगा।
अंतराय विनाश गुण सम्यक्त्व क्षायिक पाऊँगा॥
अष्टकर्म विनाश हे प्रभु गुण अनंत प्रकट करूँ।
आत्मज्ञान प्रकाश पा संसार सर्व विघट करूँ॥

(सोरठा)

कर्म सर्व दुःखरूप, मूल प्रकृतियाँ आठ हैं।
इक शत अड़तालीस, उत्तर प्रकृति प्रसिद्ध हैं।।
कर्म घातिया चार, आतम के गुण घातते।
हैं अघातिया चार, मुक्ति-सौख्य-बाधक सदा।।

कर्म घातिया चार, पहला ज्ञानावरण है।
इसका ही तो भ्रात, द्वितिय दर्शनावरण है।।
भव-विभ्रम का मूल, मोहनीय है तीसरा।
शिवसुख-बाधक पूर्ण, अन्तराय चौथा गिनो।।

अरु अघातिया चार, पहला आयु प्रसिद्ध है।
द्विविध कर्म है नाम, तृतीय गोत्र पहचानिए।।
भवमय दुःख-सुखरूप, वेदनीय चौथा सुनो।
ये ही आठों कर्म, त्वरित दहन के योग्य हैं।।

(छंद - ताटंक)

घातिकर्म की सैंतालीस प्रकृति करतीं घातक-उत्पात।
अघातिया की इकशत एक प्रकृति से रुकता मुक्ति-प्रभात।।
पहले घातिकर्म क्षय करना फिर अघातिया क्षय करना।
दोनों को क्षय करके ही तुम मुक्तिप्रभात प्राप्त करना।।

(वीरछन्द)

कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति को अब तुम जानो भलीप्रकार।
ऐसी स्थिति नहीं बँधे फिर इसका ही तुम करो विचार।।
ज्ञानावरण कर्म की उत्कृष्ट कोड़ाकोड़ी सागर तीस।
कर्म दर्शनावरण की है कोड़ाकोड़ी सागर तीस।।

वेदनीय कर्म की स्थिति कोड़ाकोड़ी सागर तीस।
अन्तराय की उत्कृष्ट स्थिति कोड़ाकोड़ी सागर तीस।।

नामकर्म की उत्कृष्ट स्थिति कोड़ाकोड़ी सागर बीस।
गोत्रकर्म की उत्कृष्ट स्थिति कोड़ाकोड़ी सागर बीस।।

आयुकर्म की उत्कृष्ट स्थिति तुम तैंतिस सागर लो जान।
मोहनीय की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर स्थिति मान।।

अब कर्मों की जघन्य स्थिति भी जानो तुम भलीप्रकार।
उन्हें नहीं बँधती है जो कर देते हैं इनका संहार।।
जैसे नामकर्म का होता वैसा ही बँधता अनुभाग।
स्थिति तदनुसार बँधती है जैसा भी होता है राग।।

(छंद - रोला)

है अन्र्मुहूर्त कर्म ज्ञानावरणी की।
है अन्तर्मुहूर्त कर्म दर्शनावरणी की।।
मोहनीय की है अन्तर्मुहूर्त यह जानो।
वेदनीय की है बारह मुहूर्त पहचानो।।

आयुकर्म की भी अन्तर्मुहूर्त पहचानो।
अंतराय की भी अन्तर्मुहूर्त तुम जानो।।
नामकर्म की केवल आठ मुहूरत जानो।
गोत्रकर्म की केवल आठ मुहूरत जानो।।

जैसा हो परिणाम बंध वैसा होता है।
जघन्य या उत्कृष्ट मध्य बंधन होता है।।
कौन-कौन सी प्रकृति बँधी वह प्रकृति-बंध है।
आत्मप्रदेशों में बँधना वह प्रदेश-बंध है।।

कितनी स्थिति बँधी वही स्थिति-बंध है।
कितना रस बल बँधा वही अनुभाग-बंध है।।
नाना करम उदय को ही विपाक कहते हैं।
इस विपाक को ही अनुभाग-बंध कहते हैं।।

स्थिति पूरी होते ही सविपाक-निर्जरा।
स्थिति के पहले होती अविपाक-निर्जरा॥
कर्मों के नामानुसार अनुभाग-बंध है।
भाव-द्रव्य आस्रव से ही यह कर्म-बंध है॥

शुभपरिणामों से शुभ-प्रकृति अधिक बँधती है।
उसके संग में अशुभ-प्रकृति आकर बँधती है॥
अशुभभाव से अशुभप्रकृति अधिक बँधती है।
उसके संग में शुभप्रकृति अल्प बँधती है॥

(दोहा)

ज्ञानावरणी ढक रहा, है अनादि से ज्ञान।
पाँच प्रकृति इस कर्म की, नाशक ज्ञान महान॥
कर्म दर्शनावरणी को, दर्शन बाधक मान।
इसकी कुल नौ प्रकृतियाँ, क्षय करते भगवान॥

वेदनीय इस कर्म की, निज सुख बाधक मान।
इसकी दोनों प्रकृतियाँ, क्षय करते गुणवान॥
मोहनीय सम्यक्त्व में, पूरा बाधक मान।
नाश योग्य हैं प्रकृतियाँ, अट्ठाईस प्रधान॥

आयुकर्म से बंध है, चहुँगति की पहचान।
प्रकृति चार के नाश से, हो जाते भगवान॥
नामकर्म जड़ देहप्रद, सर्व दुःखों की खान।
हैं तिरानवे प्रकृतियाँ, नाश योग्य लो जान॥

गोत्रकर्म को जानिए, ऊँच-नीच है काज।
इसकी भी दो प्रकृतियाँ, क्षय करते मुनिराज॥
दान-लाभ-भोगादि में, बाधक है अंतराय।
प्रकृति पाँच इस कर्म की, क्षय करते मुनिराय॥

कर्म-प्रकृतियाँ मूल वसु, ये ही भवतरु मूल।
इक शत अड़तालीस हैं, उत्तर प्रकृति जु शूल।।
चार घातिया नाशते, हो जाते अरहंत।
चार अघाति विनाशते, होते सिद्ध महन्त।।

अष्टकर्म को नाश कर, हुए सिद्ध भगवन्त।
त्रिलोकाग्र के शीर्ष पर, सदा सतत जयवन्त।।

(वीरछन्द)

मूल वृक्ष का कर्म वृक्ष है जिसमें चार घाति दृढ़ मूल।
संग बंध करता अघातिया भी जो है निज के प्रतिकूल।।
इन्हें नष्ट करने का श्रम ही सर्वोत्तम श्रम कहलाता।
केवल निश्चय श्रमण साधु ही इन्हें नष्ट है कर पाता।।

पहले घातिकर्म क्षय करता सर्व कषाय भाव क्षय कर।
फिर अघातिया क्षय करता है सकल योग पूर्ण जय कर।।
हो जाती निष्कर्म अवस्था कर्मजयी बन जाता है।
द्रव्य-भाव-नो कर्म नाशकर कर्मरहित हो जाता है।।

जो अघातिया क्षय करने का पहले करते व्यर्थ उपाय।
वही घातिया कर्मों के बंधन पाते हैं बहु दुःखदाय।।
उलटी ही गिनती गिनता है करता है सब औंधे काम।
कर्म नहीं क्षय कर पाता है पाता है सदैव दुःखधाम।।

सीधी गिनती गिने अगर तो घातिकर्म क्षय हो जाता।
फिर अघातिया भी क्षय होते फिर न लौट वापस आता।।
पहले दर्शन मोह जीतना सम्यग्दर्शन प्रकटाना।
फिर चारित्र मोह जीतना निज अरहंत दशा पाना।।

यही सुविधि है मोक्षमार्ग की इसका ही पालन करना।
मत बहकावे में तुम आना पहले घाति नाश करना।।

नहीं समझना यह मिथ्यात्व अकिंचित्कर तुम पलभर भी।
जैसे भी हो यह मिथ्यात्व तिमिर क्षय करना मरकर भी॥

इसे अकिंचित्कर कहनेवाले तो निश्चित भोले प्राणी।
इसे अकिंचित्कर नहीं मानना कभी भूलकर हे प्राणी॥
व्रत लेने का अगर भाव हो तो पहले समकित लेना।
फिर व्रत लेना बड़े भाव से कर्मों को क्षय कर देना॥

बिन सम्यग्दर्शन के यदि व्रत लोगे तो यह तुम जानो।
त्रस पर्याय व्यर्थ जाएगी आगम का कहना मानो॥

(गीतिका)

दो मुझे आशीष जिनवर करूँ मैं निज आत्मज्ञान।
विनय से पूजन करूँ मैं सिद्ध परमेष्ठी महान॥
कर्म आठों ध्वस्त कर दूँ नाथ ऐसी शक्ति दो।
धर्म रत्नत्रय परम की सतत पावन भक्ति दो॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

❖ ❖ ❖

ऊँचे ऊँचे शिखरों वाला रे, यह तीरथ हमारा।
तीरथ हमारा हमें लागे है प्यारा॥टेक॥

श्री जिनवर से भेंट करावे, जग को मुक्तिमार्ग दिखावे॥
मोह का नाश करावे रे, यह तीरथ हमारा॥१॥

शुद्धातम से प्रीति लगावे, जड़-चेतन को भिन्न बतावे॥
भेद-विज्ञान करावे रे, यह तीरथ हमारा॥२॥

पूजन क्र. १

श्री सिद्ध पूजन

स्थापना

(छंद - ताटंक)

हे सिद्ध तुम्हारे वन्दन से उर में निर्मलता आती है।
भव-भव के पातक कटते हैं पुण्यावलि शीश झुकाती है॥
तुम गुण चिन्तन से सहज देव होता स्वभाव का भान मुझे।
है सिद्ध समान स्वपद मेरा हो जाता निर्मल ज्ञान मुझे॥

इसलिए नाथ पूजन करता कब तुम समान मैं बन जाऊँ।
जिस पथ पर चल तुम सिद्ध हुए मैं भी चल सिद्ध स्वपद पाऊँ॥
ज्ञानावरणादिक अष्टकर्म को नष्ट करूँ ऐसा बल दो।
निज अष्ट स्वगुण प्रकटैं मुझमें सम्यक् पूजन का यह फल हो॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीरछन्द)

कर्म मलिन हूँ जन्म-जरा-मृतु को कैसे कर पाऊँ क्षय।
निर्मल आत्मज्ञान जल दो प्रभु जन्म-मृत्यु पर पाऊँ जय॥
अजर अमर अविकल अविकारी अविनाशी अनन्त गुणधाम।
नित्य निरंजन भवदुःख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

शीतल चंदन ताप मिटाता किन्तु नहीं मिटता भवताप।
निज स्वभाव का चन्दन दो प्रभु मिटे राग का सब संताप॥

अजर-अमर अविकल अविकारी अविनाशी अनन्त गुणधाम।
नित्य निरंजन भवदुःख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ।।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं नि.।

उलझा हूँ संसारचक्र में कैसे हो इससे उद्धार।
अक्षय तंदुल रत्नत्रय दो मैं हो जाऊँ भवसागर पार ।।
अजर अमर अविकल अविकारी अनन्त गुणधाम।
नित्य निरंजन भवदुःख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ।।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि.।

कामव्यथा से घायल हूँ मैं कैसे करूँ काममद नाश।
विमल दृष्टि दो ज्ञानपुष्प दो कामभाव हो पूर्ण विनाश ।।
अजर अमर अविकल अविकारी अविनाशी अनन्त गुणधाम।
नित्य निरंजन भवदुःख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ।।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविनाशनाय पुष्पं नि.।

क्षुधारोग के कारण मेरा तृप्त नहीं हो पाया मन।
शुद्ध भाव नैवैद्य मुझे दो सफल करूँ प्रभु यह जीवन ।।
अजर अमर अविकल अविकारी अविनाशी अनन्त गुणधाम।
नित्य निरंजन भवदुःख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ।।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।

मोहरूप मिथ्यात्व महातम अन्तर में छाया घनघोर।
ज्ञानदीप प्रज्वलित करो प्रभु प्रकटे समकित रवि का भोर ।।
अजर अमर अविकल अविकारी अविनाशी अनन्त गुणधाम।
नित्य निरंजन भवदुःख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम ।।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.।

कर्म शत्रु निज सुख के घाता इनको कैसे नष्ट करूँ।
शुद्ध धूप दो ध्यान अग्नि में इन्हें जला भव कष्ट हरूँ ।।

अजर अमर अविकल अविकारी अविनाशी अनन्त गुणधाम।
नित्य निरंजन भवदु:ख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम॥
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मविनाशनाय धूपं नि.।

निज चैतन्य स्वरूप न जाना कैसे निज में आऊँगा।
भेदज्ञान फल दो हे स्वामी ! स्वयं मोक्षफल पाऊँगा॥
अजर अमर अविकल अविकारी अविनाशी अनन्त गुणधाम।
नित्य निरंजन भवदु:ख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम॥
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल प्राप्तये फलं नि.।

अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चढ़ाऊँ अष्टकर्म का हो संहार।
निज अनर्घ्यपद पाऊँ भगवन सादि अनन्त परम सुखकार॥
अजर अमर अविकल अविकारी अविनाशी अनन्त गुणधाम।
नित्य निरंजन भवदु:ख भंजन ज्ञानस्वभावी सिद्ध प्रणाम॥
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(वीरछन्द)

मुक्तिकन्त भगवन्त सिद्ध को मन-वच-काय सहित सु प्रणाम।
अर्ध चन्द्रसम सिद्धशिला पर आप विराजे आठों याम॥
ज्ञानावरण दर्शनावरणी मोहनीय अन्तराय मिटा।
चार घातिया नष्ट हुए तो फिर अरहंत रूप प्रकटा॥

वेदनीय अरु आयु नाम अरु गोत्र कर्म का नाश किया।
चउ अघातिया नाश किये तो स्वयं स्वरूप प्रकाश लिया॥
अष्टकर्म पर विजय प्राप्त कर अष्ट स्वगुण तुमने पाये।
जन्म-मृत्यु का नाश किया निज सिद्ध स्वरूप स्वगुण भाये॥

निज स्वभाव में लीन विमल चैतन्य स्वरूप अरूपी हो।
पूर्ण ज्ञान हो पूर्ण सुखी हो पूर्ण बली चिद्रूपी हो॥

वीतराग हो सर्व हितैषी राग-द्वेष का नाम नहीं।
चिदानन्द चैतन्य स्वभावी कृतकृत्य कुछ काम नहीं॥
स्वयं सिद्ध हो स्वयं बुद्ध हो स्वयं श्रेष्ठ समकित आगार।
गुण अनन्त दर्शन के स्वामी तुम अनंत गुण के भण्डार॥
तुम अनन्त बल के हो धारी ज्ञान अनन्तानन्त अपार।
बाधा रहित सूक्ष्म हो भगवन् अगुरुलघु अवगाह उदार॥
सिद्ध स्वगुण के वर्णन तक की मुझमें प्रभुवर शक्ति नहीं।
चलूँ तुम्हारे पथ पर स्वामी ऐसी भी तो भक्ति नहीं॥
देव तुम्हारा पूजन करके हृदयकमल मुसकाया है।
भक्ति भाव उर में जागा है मेरा मन हर्षाया है॥
तुम गुण का चिन्तवन करे जो स्वयं सिद्ध बन जाता है।
हो निजात्म में लीन दुखों से छुटकारा पा जाता है॥
अविनश्वर अविकारी सुखमय सिद्ध स्वरूप विमल मेरा।
मुझमें है मुझसे ही प्रकटेगा स्वरूप अविकल मेरा॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने जयमालापूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

(दोहा)

शुद्ध स्वभावी आतमा, निश्चय सिद्ध स्वरूप।
गुण अनन्तयुत ज्ञानमय, है त्रिकाल शिवभूप॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

जाप्य मंत्र - ॐ ह्रीं श्री अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः ।

पूजन क्र. २

श्री सिद्ध परमेष्ठी विधान

समुच्चय पूजन

स्थापना

(छंद - ताटंक)

अष्ट गुणों से भूषित परम सिद्ध परमेष्ठी को वन्दन।
ज्ञानावरणादिक कर्मों को हर कर पाया मुक्ति सदन॥
गुण अनंत की महिमा पायी मुख्य अष्ट गुण प्रकटाए।
सिद्धपुरी सिंहासन पाकर सिद्ध शिला पति कहलाए॥
विनयपूर्वक अष्टगुणों की पूजन का जागा उर भाव।
अष्ट-स्वगुण मैं भी पाऊँ प्रभु अष्टकर्म का करूँ अभाव॥

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छंद - मानव)

निज शुद्धभाव जल लाऊँ सिद्धों के गुण ही गाऊँ।
जन्मादि रोगत्रय क्षयहित शिवपथ पर चरण बढ़ाऊँ॥
हैं श्री सिद्ध परमेष्ठी प्रभु गुण अनंत से भूषित।
मैं मुख्य अष्टगुण पूजूँ हो जाऊँ भवदुख विरहित॥

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

निज शुद्धभाव का चंदन शीतल निज उर में लाऊँ।
भवज्वर संपूर्ण मिटाऊँ तुम सम शीतलता पाऊँ॥
हैं श्री सिद्ध परमेष्ठी प्रभु गुण अनंत से भूषित।
मैं मुख्य अष्टगुण पूजूँ हो जाऊँ भवदुख विरहित॥

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं नि.।

निज शुद्धभाव अक्षत ही क्षत भावों को क्षय करता।
अक्षय पद का दाता है उर में अखण्ड सुख भरता।।
हैं श्री सिद्ध परमेष्ठी प्रभु गुण अनंत से भूषित।
मैं मुख्य अष्टगुण पूजूँ हो जाऊँ भवदुख विरहित।।

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि.।

निज शुद्धभाव पुष्पांजलि गुणशील महान प्रदाता।
कामाग्नि बुझाती है यह निष्काम भाव की दाता।।
हैं श्री सिद्ध परमेष्ठी प्रभु गुण अनंत से भूषित।
मैं मुख्य अष्टगुण पूजूँ हो जाऊँ भवदुख विरहित।।

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि.।

निज शुद्धभाव रस चरु ही पद निराहार के दाता।
हैं क्षुधारोग विध्वंसक परिपूर्ण सौख्य के दाता।।
हैं श्री सिद्ध परमेष्ठी प्रभु गुण अनंत से भूषित।
मैं मुख्य अष्टगुण पूजूँ हो जाऊँ भवदुख विरहित।।

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।

निज शुद्धभाव के दीपक उर में प्रकाश भरते हैं।
मिथ्यात्व मोहतम सारा कुछ क्षण में ही हरते हैं।।
हैं श्री सिद्ध परमेष्ठी प्रभु गुण अनंत से भूषित।
मैं मुख्य अष्टगुण पूजूँ हो जाऊँ भवदुख विरहित।।

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.।

निज शुद्धभाव की पावन प्रिय धूप परम हितकारी।
वसुकर्म नष्ट करती है देती पद शिवसुखकारी।।
हैं श्री सिद्ध परमेष्ठी प्रभु गुण अनंत से भूषित।
मैं मुख्य अष्टगुण पूजूँ हो जाऊँ भवदुख विरहित।।

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।

निज शुद्धभाव फल उत्तम है महामोक्ष फलदाता।
जो निज स्वभाव को भजता वह शीघ्र परम पद पाता॥
हैं श्री सिद्ध परमेष्ठी प्रभु गुण अनंत से भूषित।
मैं मुख्य अष्टगुण पूजूँ हो जाऊँ भवदुख विरहित॥

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महामोक्षफलप्राप्तये फलं नि.।

निज शुद्धभाव के निर्मल निज अर्घ्य बनाऊँ अनुपम।
पदवी अनर्घ्य पाने में हो जाऊँ हे प्रभु सक्षम॥
हैं श्री सिद्ध परमेष्ठी प्रभु गुण अनंत से भूषित।
मैं मुख्य अष्टगुण पूजूँ हो जाऊँ भवदुख विरहित॥

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अर्घ्यावलि

(छंद - ताटंक)

ज्ञान अनंत महा महिमामय परम श्रेष्ठ है परम विशाल।
युगपत् लोकालोक जानता एक समय में तीनों काल॥
सकल द्रव्य गुण पर्यायों को दर्पणवत् लेता है जान।
रहित ज्ञान आवरण ज्ञान गुण अर्घ्य चढ़ाऊँ हे भगवान॥

ॐ ह्रीं अनंतज्ञानगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनंत दर्शन की महिमा से शोभित हैं सिद्ध महंत।
लोकालोक तीन काल का दृष्टा दर्शन गुण भगवंत॥
मैं अनंत दर्शन गुण को ही अर्घ्य चढ़ाऊँ हे भगवान।
रहित दर्शनावरणी केवल दर्शन पाऊँ महामहान॥

ॐ ह्रीं अनतंदर्शनगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अनंत सुख महिमा मंडित अव्याबाधी सुख का स्रोत।
सादि अनंतानंत काल तक निज शिवसुख से ओतप्रोत॥

यह सम्पूर्ण सुखों से निर्मित वेदनीय का कहीं न नाम।
जितने सिद्ध महाप्रभु हैं उनमें यह करता है विश्राम।।

ॐ ह्रीं अनंतगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण क्षायिक सम्यक्त्व श्रेष्ठ है तीनों लोकों में विख्यात।
इसके होने पर ही होता महामोक्ष का विमल प्रभात।।
महामोहतम का नाशक है दृढ़ श्रद्धा का है आधार।
अर्घ्य चढ़ाऊँ विनय भाव से पाऊँ ध्रुव श्रद्धान अपार।।

ॐ ह्रीं क्षायिकसम्यक्त्वगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण अवगाहनत्व सिद्ध परमेष्ठी का पावन शृंगार।
चार आयु का क्षयकर्ता है शिवसुख देता अपरंपार।।
परमानंद समुद्र यही है चारों गति से सदा विहीन।
भक्तिभाव से अर्घ्य समर्पित करके होऊँ परम प्रवीण।।

ॐ ह्रीं अवगाहनत्वगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण सूक्ष्मत्व परम महिमामय नाम कर्म से रहित सदा।
तेरानवे प्रकृति से विरहित सादि अनंत काल सुखदा।।
सूक्ष्मत्व गुण को मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ शुद्ध भावनामय।
बनूँ सिद्ध परमेष्ठी इक दिन साधक रहूँ साधनामय।।

ॐ ह्रीं सूक्ष्मत्वगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अगुरुलघुत्व स्वगुण की गरिमा सिद्धस्वपदधारी पाते।
गोत्र कर्म से विरहित होकर सिद्धशिलापति हो जाते।।
अर्घ्य चढ़ाऊँ अगुरुलघुत्व सुगुण को हे अन्तर्यामी।
समभावी हो साम्यभाव रस पियूँ सदा ही हे स्वामी।।

ॐ ह्रीं अगुरुलघुत्वगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्ण अनंतवीर्य गुण पावन शाश्वत बल का दाता है।
पंचलब्धियों का दाता है आगम में विख्याता है।।

अंतराय से रहित सर्वथा शाश्वत सुख का है सागर।
भावसहित मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ भर लूँ अनुभव रस गागर।।

ॐ ह्रीं अनंतवीर्यगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(छंद - ताटंक)

ज्ञानावरणी के अभाव से पूर्ण ज्ञान गुण आता है।
दर्शन आवरणी के क्षय से दर्शन गुण निज आता है।।
वेदनीय के अभाव से अव्याबाधी गुण आता है।
मोहनीय के अभाव से ही क्षायिक समकित आता है।।

आयुकर्म के अभाव से ही अवगाहनत्व आता है।
नामकर्म के अभाव से सूक्ष्मत्व सुगुण हर्षाता है।।
गोत्रकर्म के अभाव से गुण अगुरुलघु उर आता है।
अंतराय के अभाव से गुण अनंतवीर्य सज आता है।।

ये आठों ही गुण आठों कर्मों के क्षय से आते हैं।
जो आठों ही गुण पा लेते वही सिद्ध हो जाते हैं।।
मैं भी ऐसा यत्न करूँ प्रभु सम्यग्दर्शन प्रकटाऊँ।
फिर संयम ले श्रेणी चढ़कर अष्टकर्म घन विघटाऊँ।।

निश्चित अष्ट स्वगुण मेरे भीतर प्रगटेंगे हे स्वामी।
गुण अनंत से शोभित हो पाऊँगा ध्रुव सुखनामी।।

(छंद - मानव)

रागादि भाव का बंधन भव-भव तक दुख देता है।
अज्ञानभाव के कारण सुख सभी छीन लेता है।।
विपरीत विनय संशय अरु एकान्त महादुख देता।
पाँचों मिथ्यात्व भाव ही प्रतिपल अनंत दुख देता।।

पहले मिथ्यात्व विनाशो फिर व्रत का भाव धरो उर।
बिन समकित जप तप संयम चहुँगति दुख ही देता है।।
समकित ले अविरति नाशो जीतो प्रमाद को तत्क्षण।
संयम हो जाता है तो सारे ही सुख देता है।।

(दोहा)

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ, मुख्य अष्टगुण हेतु।
इस जीवन में प्राप्त हो, गुण अनंत का सेतु।।

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छंद - दिग्वधू)

प्रभु जन्म जरा का दुख, मुझसे न सहा जाता।
हर बार मरण का दुख, पीड़ा बहु पहुँचाता।।
भवज्वर की पीड़ा से, मैं आकुल-व्याकुल हूँ।
गुण शीतल शान्त न हो, तो सदा अनाकुल हूँ।।
क्षत भावों के कारण, अक्षत गुण घात किए।
अक्षय पद नहीं मिला, ध्रुव सुख नाहीं प्राप्त किए।।
चिर कामबाण का दुख, पीड़ा बहु पहुँचाता।
गुण शील पुष्प के बिन निष्काम न सुख आता।।
यह क्षुधारोग मुझको, देता अनादि से दुख।
निज अनाहार पद बिन मिलता न रंच भी सुख।।
भ्रमतम का अँधियारा होने न ज्ञान देता।
जगती है बुद्धि कभी तो उसको हर लेता।।
बिन ध्यानधूप के प्रभु सम्यक् न ध्यान होता।
पद नित्य निरंजन बिन क्या सुख महान होता।।

फल मोक्ष नहीं पाया भव-भव में भटका हूँ।
परभावों में ही प्रभु अबतक मैं अटका हूँ॥
भव के ही अर्घ्य बना निज दुख ही उपजाया।
पदवी अनर्घ्य के हित निज को न कभी ध्याया॥

हे सिद्ध परमेष्ठी प्रभु तुमको ही नित ध्याऊँ।
तुव शरण प्राप्त करके तुम-सम ही बन जाऊँ॥
इसलिए करूँ पूजन वन्दन अर्चन स्वामी।
शाश्वत शिव-सुख दे दो अब तो अन्तर्यामी॥

भव भाव अभाव करूँ शाश्वत स्वभाव पाऊँ।
आनंद अतीन्द्रिय की धारा उर में लाऊँ॥

ॐ ह्रीं अष्टगुणसमन्वितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं नि.।

आशीर्वाद

(वीरछन्द)

श्री सिद्धपरमेष्ठी प्रभु के वसु गुण पूजे मैंने आज।
निज स्वभाव की महिमा पाकर पाऊँ अपना निजपदराज॥
श्री सिद्ध परमेष्ठी प्रभु के विधान का है यह उद्देश्य।
भवदुख क्षय हों कर्म नाश हो जिन गुण सम्पति मिले विशेष॥

इत्याशीर्वादः।

✣✣✣

कर्मोदय क्षय क्षयोपशम, उपशम से निरपेक्ष।
सहज शुद्ध निर्मल अहो! ज्ञायकभाव अखेद॥

पूजन क्र. ३

ज्ञानावरणीकर्म विरहित श्री सिद्धपरमेष्ठी पूजन

स्थापना

(दोहा)

ज्ञानावरणी कर्म के, नाशक श्री अरहंत।
केवलज्ञान महान के, धारक श्री भगवंत॥
ज्ञानावरण विनाश कर, पाऊँ केवलज्ञान।
विनयसहित पूजन करूँ, करूँ आत्मकल्याण॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(सार-जोगीरासा)

जन्म-जरा-मृतु क्षय करने को नाथ शरण में आया।
ज्ञान अनंतानंत प्राप्ति का दृढ़ निश्चय उर भाया॥
ज्ञानावरणी कर्म विनाशक सिद्ध प्रभु को वन्दन।
पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्त्ता ज्ञानसूर्य अभिनन्दन॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवाताप ज्वर की पीड़ा से कष्ट अनंत उठाया।
भवज्वरनाशक शीतल चंदन भावमयी मैं लाया॥

ज्ञानावरणी कर्म विनाशक सिद्ध प्रभु को वन्दन।
पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्त्ता ज्ञान सूर्य अभिनन्दन॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत जीवन क्षत है मेरा अक्षय पद कब पाऊँ।
भवसागर से तर जाने को अक्षत शालि चढ़ाऊँ॥
ज्ञानावरणी कर्म विनाशक सिद्ध प्रभु को वन्दन।
पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्त्ता ज्ञानसूर्य अभिनन्दन॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामबाण की पीड़ा नाशूँ पुष्प मनोज्ञ चढ़ाऊँ।
अविकारी भावों को पाकर महाशील गुण पाऊँ॥
ज्ञानावरणी कर्म विनाशक सिद्ध प्रभु को वन्दन।
पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्त्ता ज्ञानसूर्य अभिनन्दन॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधारोग विध्वंस हेतु मैं शुभ नैवेद्य चढ़ाऊँ।
मैं तो नाथ अनाहारी हूँ अनुपम पद प्रकटाऊँ॥
ज्ञानावरणी कर्म विनाशक सिद्ध प्रभु को वन्दन।
पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्त्ता ज्ञानसूर्य अभिनन्दन॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महामोहतम ध्वंस करूँ मैं दीप ज्ञान के लाऊँ।
युगपत् लोकालोक सु झलके केवलज्ञान उपाऊँ॥
ज्ञानावरणी कर्म विनाशक सिद्ध प्रभु को वन्दन।
पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्त्ता ज्ञानसूर्य अभिनन्दन॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टकर्म विध्वंसक पावन धूप ध्यानमय लाऊँ।
गुण अनंत प्रकटाने को पद नित्य निरंजन पाऊँ॥
ज्ञानावरणी कर्म विनाशक सिद्धप्रभु को वन्दन।
पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्त्ता ज्ञानसूर्य अभिनन्दन॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

महामोक्ष फल पाने का ही निश्चय उर में लाऊँ।
यह संसार अभाव करूँ मैं महामोक्ष फल पाऊँ॥
ज्ञानावरणी कर्म विनाशक सिद्धप्रभु को वन्दन।
पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्त्ता ज्ञान सूर्य अभिनन्दन॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नाथ अनर्घ्य स्वपद प्रकटाऊँ यही भाव उर लाऊँ।
भव अटवी को ध्वंस करूँ मैं अर्घ्य अपूर्व बनाऊँ॥
ज्ञानावरणी कर्म विनाशक सिद्ध प्रभु को वन्दन।
पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्त्ता ज्ञानसूर्य अभिनन्दन॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

(छंद - चान्द्रायण)

मति ज्ञानावरणी बाधक मतिज्ञान में।
मति ज्ञानावरणी नाशूँगा ध्यान में॥
ज्ञानावरणी पाँच प्रकृतियाँ क्षय करूँ।
ज्ञानावरणी कर्म आज मैं जय करूँ॥१॥

ॐ ह्रीं मतिज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रुत ज्ञानावरणी बाधक श्रुतज्ञान में।
श्रुत ज्ञानावरणी नाशूँगा ध्यान में।।
ज्ञानावरणी पाँच प्रकृतियाँ क्षय करूँ।
ज्ञानावरणी कर्म आज मैं जय करूँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्रुतज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अवधिज्ञान आवरण जु बाधक ज्ञान में।
अवधिज्ञान आवरण विनाशूँ ध्यान में।।
ज्ञानावरणी पाँच प्रकृतियाँ क्षय करूँ।
ज्ञानावरणी कर्म आज मैं जय करूँ।।३।।

ॐ ह्रीं अवधिज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मनपर्यय आवरण प्रकृति बाधक सदा।
इसका क्षय कर पाऊँ ज्ञान महा सदा।।
ज्ञानावरणी पाँच प्रकृतियाँ क्षय करूँ।
ज्ञानावरणी कर्म आज मैं जय करूँ।।४।।

ॐ ह्रीं मन:पर्ययज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

केवल ज्ञानावरण ज्ञान बाधक महा।
इसे नाश दूँ पाऊँ केवल रवि महा।।
ज्ञानावरणी पाँच प्रकृतियाँ क्षय करूँ।
ज्ञानावरणी कर्म आज मैं जय करूँ।।५।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पाँचों प्रकृति विनाश कर, पाऊँ केवलज्ञान।
स्वपर प्रकाशक ज्ञान पा, पाऊँ स्वपद महान।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

महार्घ्य

(छंद - ताटंक)

ज्ञान समुच्चय महिमा हो तो ज्ञान हृदय में लहराता।
ज्ञान-भावना पूर्वक चेतन स्याद्वाद ध्वज फहराता।।
ज्ञानभाव बिन भवदुख तरु की छाया में पलता आया।
कभी न सम्यग्दर्शन पाया अत: न निज को सुलझाता।।
जिसने सम्यग्ज्ञान शक्ति का किया अवतरण अंतर में।
वही आत्मा निज पुरुषार्थ शक्ति से सिद्ध स्वपद पाता।।
पाखण्डों के भवन गिराने का उपाय करता है ज्ञान।
रूढ़िवाद के पर्वत ढाने का उपाय भी यह पाता।।
क्रियाकाण्ड के आडम्बर से दूर त्वरित हो जाता है।
मुक्तिप्राप्ति का सतत यत्न भी यह निज अंतर में लाता।।
मोक्षमार्ग पर चलने का उद्यम पवित्र करता है ज्ञान।
अष्टकर्म को जय करता है पूर्णानन्द सौख्य पाता।।
ज्ञानावरणी कर्म नाश करने में है पूरा सक्षम।
यही ज्ञान कैवल्यज्ञानयुत मोक्ष सौख्य उर में लाता।।

(दोहा)

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ, करूँ आत्मकल्याण।
ज्ञानावरणी नाश कर, पाऊँ केवलज्ञान।।

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छंद - गीतिका)

ज्ञान की जब भावना हो मनुज मिथ्याभाव हर।
त्वरित ही सन्मार्ग पाता रुचि जगाता मनोहर।।

असंयम की भावना भी कुचल देता ज्ञान से।
प्रमादों को नष्ट करता सावधान स्वध्यान से ॥
फिर कषायें नष्ट करता प्राप्त करता यथाख्यात।
प्रकट कर सर्वज्ञ निज पद ज्ञान का पाता प्रभात ॥
योग क्षय का सतत उद्यम स्वत: होता है अपूर्व।
योग क्षय कर सिद्ध होता स्वपद होता ध्रुव अपूर्व ॥

साद्यनन्तानन्त कालों स्वयं में करता निवास।
विलसता है मोक्षसुख अरु स्वयं की पाता सुवास ॥
अभी जिनपथ को सुसम्यक् प्राप्त करना चाहिए।
ज्ञानभावी भावना उर व्याप्त करना चाहिए ॥

आत्मसुख की भावना से ओतप्रोत हृदय हुआ।
भावना भवनाशिनी का प्राप्त आज समय हुआ ॥
मोह भ्रम से रहित होकर शुद्ध जीवन जियूँगा।
शुद्ध अनुभव रससहित निज ज्ञान रस ही पियूँगा ॥

ज्ञान गुण सम्पन्न होकर रहूँगा आलोक में।
शुद्ध बुद्ध प्रबुद्ध होकर बहूँगा निज लोक में ॥
ज्ञान का आवरण क्षय कर पाऊँगा कैवल्यज्ञान।
सिद्ध प्रभु को पूजकर में बनूँगा सबसे महान ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्योअनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आशीर्वाद

(दोहा)

ज्ञानावरण विनाश से, मिले स्वपद निर्वाण।
अपने ही बल से करूँ, मुक्ति-भवन निर्माण ॥

इत्याशीर्वाद:।

पूजन क्र. ४

दर्शनावरणीकर्म विरहित श्री सिद्धपरमेष्ठी पूजन

स्थापना

(छंद - रोला)

श्री सिद्ध प्रभुओं को सादर सविनय वन्दूँ।
दर्शन आवरणी के नाशक को अभिनन्दूँ॥
ज्ञान भावना भाऊँ अपना ज्ञान जगाऊँ।
केवल दर्शन के बाधक भव भाव भगाऊँ॥

(दोहा)

भावसहित पूजन करूँ, करूँ आत्मकल्याण।
केवल-दर्शन प्राप्त कर, दृष्टा बनूँ महान॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छंद - राधिका)

जन्मादि रोग त्रय नष्ट करूँ हे स्वामी।
क्षीरोदधि जल लाया हूँ अन्तर्यामी॥
अरहंतदेव दर्शन अनन्त गुणधारी।
नौ प्रकृति दर्शनावरणी के क्षयकारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

संसार ताप क्षय करने को मैं आया।
उत्तम मलयागिरि चंदन शीतल लाया॥
अरहंत देव दर्शन अनंत गुणधारी।
नौ प्रकृति दर्शनावरणी के क्षयकारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं नि.।

अक्षय पद पाने का विवेक उर भाया।
मैंशालिअखण्डितउज्ज्वलचिन्मयलाया॥
अरहंत देव दर्शन अनंत गुणधारी।
नौ प्रकृति दर्शनावरणी के क्षयकारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि.।

मैं कामबाण नाशक गुण पुष्प सजाऊँ।
मैं महाशील गुण ज्ञान स्वभावी लाऊँ॥
अरहंत देव दर्शन अनंत गुणधारी।
नौ प्रकृति दर्शनावरणी के क्षयकारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि.।

चिर क्षुधा रोग विध्वंस करूँ चरु लाऊँ।
पद शीघ्र अनाहारी अपना प्रकटाऊँ॥
अरहंत देव दर्शन अनंत गुणधारी।
नौ प्रकृति दर्शनावरणी के क्षयकारी॥

ॐह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।

ध्रुव ज्ञान दीप केवल प्रकाशमय लाऊँ।
मोहान्धकार क्षय करके निज पद पाऊँ॥

अरहंत देव दर्शन अनंत गुणधारी।
नौ प्रकृति दर्शनावरणी के क्षयकारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.।

मैं शुक्लध्यान की धूप चढ़ाऊँ स्वामी।
वसु कर्म नाशकर शिव पद पाऊँ नामी॥
अरहंत देव दर्शन अनंत गुणधारी।
नौ प्रकृति दर्शनावरणी के क्षयकारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।

निजआत्मध्यान कर महामोक्षफल पाऊँ।
फल शुक्ल ध्यान का उर अविलंब सजाऊँ॥
अरहंत देव दर्शन अनंत गुणधारी।
नौ प्रकृति दर्शनावरणी के क्षयकारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.।

पदवी अनर्घ्य पाने प्रभु निज को ध्याऊँ।
निजगुण के अर्घ्य बनाऊँ शिवसुख पाऊँ॥
अरहंत देव दर्शन अनंत गुणधारी।
नौ प्रकृति दर्शनावरणी के क्षयकारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अर्घ्यावलि

(दोहा)

दर्शन आवरणी प्रकृति, नौ को लूँ पहचान।
दर्शन गुण की प्राप्ति हित, करूँ शीघ्र अवसान॥

(छंद - ताटंक)

चक्षु दर्शनावरणी विनाशूँ सम्यक् दृष्टा हो जाऊँ।
भेद दर्शनावरणी के नौ पूर्णतया प्रभु विघटाऊँ॥१॥

ॐ ह्रीं चक्षुदर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अचक्षु दर्शनावरण विनाशूँ सम्यक् दृष्टा हो जाऊँ।
भेद दर्शनावरणी के नौ पूर्णतया प्रभु विघटाऊँ ॥२॥

ॐ ह्रीं अचक्षुदर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अवधि दर्शनावरण विनाशूँ सम्यक् दृष्टा हो जाऊँ।
भेद दर्शनावरणी के नौ पूर्णतया प्रभु विघटाऊँ ॥३॥

ॐ ह्रीं अवधिदर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

केवल दर्शन का आवरण मिटा निज दृष्टा हो जाऊँ।
भेद दर्शनावरणी के नौ पूर्णतया प्रभु विघटाऊँ ॥४॥

ॐ ह्रीं केवलदर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

दर्शन-आवरणी की निद्रा प्रकृति विनाशूँ सुख पाऊँ।
भेद दर्शनावरणी के नौ पूर्णतया प्रभु विघटाऊँ ॥५॥

ॐ ह्रीं निद्रादर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

निद्रा-निद्रा प्रकृति विनाशूँ जागृत दृष्टा हो जाऊँ।
भेद दर्शनावरणी के नौ पूर्णतया प्रभु विघटाऊँ ॥६॥

ॐ ह्रीं निद्रा-निद्रा दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

दर्शन आवरणी की प्रचला प्रकृति विनाशूँ निज बल से।
भेद दर्शनावरणी के नौ नाशूँ शुद्ध आत्मबल से ॥७॥

ॐ ह्रीं प्रचला दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रचला-प्रचला प्रकृति विनाशूँ पूर्ण जागृत रहूँ सदा।
भेद दर्शनावरणी के नौ नाशूँ बनूँ आत्मदृष्टा ॥८॥

ॐ ह्रीं प्रचला-प्रचलादर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

दर्शन आवरणी की प्रकृति स्त्यानगृद्धि पूरी नाशूँ।
भेद दर्शनावरणी के नौ नाशूँ निज बल प्रकाशूँ ॥९॥

ॐ ह्रीं स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

(वीरछंद)

छद्मस्थों को पहले दर्शन होता फिर होता है ज्ञान।
किन्तु केवली प्रभु को होता युगपत ही दर्शन अरु ज्ञान॥
ज्ञानावरणी सदा ज्ञान गुण का बाधक है पहचानो।
दर्शन आवरणी दर्शन गुण का बाधक है यह जानो॥
ज्ञानावरणी दर्शन आवरणी का क्षय एक संग होता।
अत: केवली को दर्शन अरु ज्ञान सदा युगपत होता॥
क्योंकि मन:पर्यय सुज्ञान मतिज्ञान पूर्वक ही होता।
अत: मन:पर्यय दर्शन आवरण कर्म भी ना होता॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

महार्घ्य

(छंद - मानव)

अपना पुरुषार्थ जगाकर विधिपूर्वक शिवपथ पाऊँ।
रत्नत्रय की निधियाँ पा हे प्रभु पण्डित हो जाऊँ॥
रागादि विकारी भावों का नाम न रहने दूँ अब।
अनुभव रस वर्षा रिमझिम हे प्रभु सदैव ही पाऊँ॥
गुण नक्षत्रों तारों सम अन्तर्नभ चमके मेरा।
कैवल्यज्ञान रवि पाकर महिमामय ध्रुव द्युति पाऊँ॥
सिद्धत्व स्वगुण की आभा मेरे मस्तक पर दमके।
त्रैलोक्य शिखर के ऊपर शाश्वत निज वैभव पाऊँ॥
दर्शन आवरणी क्षय कर दर्शन गुण निज प्रकटाऊँ।
संसार भाव सारा ही हे प्रभु अब तो विघटाऊँ॥

(दोहा)

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ, पाऊँ स्वगुण महान।
क्षय दर्शन आवरण कर, करूँ आत्मकल्याण॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणीकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छंद - गीतिका)

आत्मदर्शन के बिना गुण दर्शनीय न मिलेगा।
विमल ज्ञाता विमल दृष्टा गुण सुमन न खिलेगा॥
आत्मशक्ति अचिन्त्य महिमावंत को मेरा प्रणाम।
प्रकट जो कर चुके उन भगवंत को मेरा प्रणाम॥
चिदानंद चिदेश का साम्राज्य है अचलित अटल।
है अगोचर ज्ञान गोचर स्वयं में रहता अचल॥
आत्मा ही तीर्थ है शुद्धात्मा जयवंत है।
यही तो परमात्मा है यही तो भगवंत है॥
सुख स्वरूपी आत्मसागर में उतरना चाहिए।
आत्म-भुजबल से भवोदधि शीघ्र तरना चाहिए॥
ज्ञान पाने की कला जिनशास्त्र से मिल जाएगी।
शान्ति पाने की कला जिनशास्त्र से झिल जाएगी॥
आत्म की अनुभूति-विधि जिनशास्त्र में मिल जाएगी।
अनुभूति निज की शान्तिप्रद इनमें न मिलने पाएगी॥
स्वानुभव से प्राप्त होती है सहज अनुभूति निज।
दृष्ट होती स्वगुण-दर्शन से सहज अनुभूति निज॥
दर्शनावरणी बिना क्षय के न होता आत्मसुख।
रहेगा भव-जाल में ही पाएगा संसारदु:ख॥
अत: अपनी आत्मा का विनय से दर्शन करें।
प्राप्त कर सम्यक्त्व वैभव सदा ही वन्दन करें॥

ॐ ह्रीं दर्शनावरणकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

आशीर्वाद

(दोहा)

क्षय दर्शन आवरण कर, पाऊँ पद निर्वाण।
अपने ही बल से करूँ, मुक्ति-भवन निर्माण॥

इत्याशीर्वाद:।

पूजन क्र. ५

वेदनीयकर्म विरहित श्री सिद्धपरमेष्ठी पूजन

स्थापना

(दोहा)

वेदनीय को नाशकर, हुए सिद्ध भगवान।
बार-बार वन्दन करूँ, पाऊँ पद निर्वाण॥
भाव सहित पूजन करूँ, वन्दूँ बारम्बार।
वेदनीय दुख नष्ट कर, पहुँचूँ भव के पार॥

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छंद - ताटंक)

जन्म जरादिक रोग विनाशक सम्यक् जल प्रभु लाया हूँ।
वेदनीय दो प्रकृति नाश हित प्रभु चरणों में आया हूँ॥
वेदनीय के नाशक सिद्धों को सादर वन्दन मेरा।
अव्याबाधी सुख गुण पाऊँ नाश करूँ भव का फेरा॥

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

भवाताप नाशक समकित चंदन हे प्रभु मैं लाया हूँ।
वेदनीय दो प्रकृति नाश हित प्रभु चरणों में आया हूँ॥
वेदनीय के नाशक सिद्धों को सादर वन्दन मेरा।
अव्याबाधी सुख गुण पाऊँ नाश करूँ भव का फेरा॥

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं नि.।

अक्षय पद पाने को हे प्रभु सम्यक् अक्षत लाया हूँ।
वेदनीय दो प्रकृति नाश हित प्रभु चरणों में आया हूँ॥
वेदनीय के नाशक सिद्धों को सादर वन्दन मेरा।
अव्याबाधी सुख गुण पाऊँ नाश करूँ भव का फेरा॥

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि.।

कामबाण की पीड़ा क्षयहित पुष्प शीलमय लाया हूँ।
वेदनीय दो प्रकृति नाश हित प्रभु चरणों में आया हूँ॥
वेदनीय के नाशक सिद्धों को सादर वन्दन मेरा।
अव्याबाधी सुख गुण पाऊँ नाश करूँ भव का फेरा॥

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि.।

क्षुधारोग विध्वंसक हे प्रभु सम्यक् चरु मैं लाया हूँ।
वेदनीय दो प्रकृति नाश हित प्रभु चरणों में आया हूँ॥
वेदनीय के नाशक सिद्धों को सादर वन्दन मेरा।
अव्याबाधी सुख गुण पाऊँ नाश करूँ भव का फेरा॥

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।

मोहतिमिर क्षय करने को प्रभु ज्ञान-दीप निज लाया हूँ।
वेदनीय दो प्रकृति नाश हित प्रभु चरणों में आया हूँ॥
वेदनीय के नाशक सिद्धों को सादर वन्दन मेरा।
अव्याबाधी सुख गुण पाऊँ नाश करूँ भव का फेरा॥

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.।

अष्टकर्म-क्षय हेतु महाप्रभु ध्यान धूप निज लाया हूँ।
वेदनीय दो प्रकृति नाश हित प्रभु चरणों में आया हूँ॥
वेदनीय के नाशक सिद्धों को सादर वन्दन मेरा।
अव्याबाधी सुख गुण पाऊँ नाश करूँ भव का फेरा॥

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।

महामोक्ष फल पाने को प्रभु शुक्ल ध्यान फल लाया हूँ।
वेदनीय दो प्रकृति नाश हित प्रभु चरणों में आया हूँ।।
वेदनीय के नाशक सिद्धों को सादर वन्दन मेरा।
अव्याबाधी सुख गुण पाऊँ नाश करूँ भव का फेरा।।

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.।

पद अनर्घ्य पाने को स्वामी अर्घ्य ज्ञानमय लाया हूँ।
वेदनीय दो प्रकृति नाश हित प्रभु चरणों में आया हूँ।।
वेदनीय के नाशक सिद्धों को सादर वन्दन मेरा।
अव्याबाधी सुख गुण पाऊँ नाश करूँ भव का फेरा।।

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अर्घ्यावलि

(दोहा)

वेदनीय दो प्रकृतियाँ, करूँ शीघ्र अवसान।
अव्याबाधी सौख्य पा, पाऊँ स्वपद महान।।

(छंद - ताटंक)

वेदनीय की साता प्रकृति शुभास्रव से बँध जाती है।
कुछ दिन तक साता देती है फिर विलीन हो जाती है।।
वेदनीय की प्रकृति विनाशूँ अव्याबाधी सुख पाऊँ।
सिद्ध दशा परिपूर्ण प्रकट कर परम शान्ति सुख प्रभु पाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं सातावेदनीयप्रकृतिविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं नि.।

प्रकृति असाता वेदनीय की अशुभास्रव से बँध जाती।
भव-अटवी में अटकाती है घोर वेदना उपजाती।।
वेदनीय की प्रकृति विनाशूँ अव्याबाधी सुख पाऊँ।
सिद्ध दशा परिपूर्ण प्रकट कर परम शान्ति सुख प्रभु पाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं असातावेदनीयप्रकृतिविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं नि.।

महार्घ्य

(छंद - सवैया)

आए हो चेतन शिवपथ पर जानो स्वद्रव्य ध्रुव निजमन से।
तुमको अब भेद-विज्ञान हुआ मिथ्यात्व तजा है इस क्षण से॥
हे ज्ञान तरंगो तुम बोलो कब तक तुम संग दोगी मेरा।
यह जड़ पुद्गल तन दुखमय है दुर्गन्धित यह कण-कण से॥
अब तक दुख की लहरें पायीं सुख पाया नहीं एक पल भी।
अब सुख का अवसर आया है तुमको जाना अन्तर्मन से॥
भवदधि में सुख-दुख की लहरें आस्रव को जागृत रखती हैं।
तुमने पायी अब संवर निधि अब बहक न जाना जीवन से॥
श्रद्धान स्वयं का दृढ़ करना तुम बहक न जाना अब पर में।
तुम दर्शन-ज्ञान स्वरूपी हो निर्णय करना निश्चय मन से॥

(दोहा)

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ, करूँ विभाव अभाव।
वेदनीय को क्षय करूँ, वेदन करूँ स्वभाव॥

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छंद - चौपाई)

वेदनीय की सही वेदना, यह अनादि की भव विडम्बना।
भाऊँ प्रतिपल आत्मभावना, क्षय में हो प्रभु अब विलम्ब ना॥
मैं अपना ही ज्ञान सजाऊँ, भेदज्ञान की बीन बजाऊँ।
ज्ञान भावना नित प्रति भाऊँ, मिथ्यादर्शन को विघटाऊँ॥
स्वपर-विवेक हृदय में लाऊँ, सम्यग्दर्शन उर प्रकटाऊँ।
परम शान्ति का सागर पाऊँ, महिमाशाली निज को ध्याऊँ॥

करूँ आत्मा का अवलोकन, जो सम्पूर्णतया आनंदघन।
पर्यायों से दृष्टि हटाऊँ, द्रव्यदृष्टि हे प्रभु बन जाऊँ॥
आत्मोन्नति के मूल मंत्र को, मोक्ष-प्राप्ति के महामंत्र को।
नाथ कभी मैं भूल न जाऊँ, निज स्वभाव स्वामी बन जाऊँ॥
संयम की फुलवारी महके, अन्तरात्मा निज में चहके।
अनुभव रस की महिमा गाऊँ, निज ज्ञायक का ध्यान लगाऊँ॥
सकल ज्ञेय ज्ञायक हो जाऊँ, सिद्ध स्वपद अपना विकसाऊँ।
राग रंग से दूर रहूँ मैं, निज स्वभाव रस चूर रहूँ मैं॥
ज्ञान गीत निज के ही गाऊँ, शुद्ध ज्ञान के वाद्य बजाऊँ।
गुण अनंतमणि माला लाऊँ, निज ज्ञायक को ही पहनाऊँ॥
यथाख्यात शृंगार करूँ मैं, मोह क्षीण कर घाति हरूँ मैं।
भव बाधाएँ सब विघटाऊँ, प्रभु अरहंत दशा प्रकटाऊँ॥
गुण सिद्धत्व प्रकट कर अपना, भव दुख सारा कर दूँ सपना।
वेदनीय का नाश करूँ मैं, अव्याबाधी सौख्य वरूँ मैं॥

ॐ ह्रीं वेदनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आशीर्वाद

(दोहा)

वेदनीय को क्षय करूँ, पाऊँ पद निर्वाण।
अपने ही बल से करूँ, मुक्ति भवन निर्माण॥

इत्याशीर्वादः।

✣✣✣

पूजन क्र. ६

मोहनीयकर्म विरहित श्री सिद्धपरमेष्ठी पूजन

स्थापना

(छंद - कुण्डलिया)

मोहनीय की प्रकृतियाँ अट्ठाईस विनाश।
हुए सिद्ध भगवंत प्रभु पाया ज्ञान प्रकाश ।।
पाया ज्ञान प्रकाश घातिया चारों क्षयकर।
निमिष मात्र में त्रेसठ कर्म प्रकृतियाँ जयकर ।।
मैं अब पूजन करता हूँ निज-वन्दनीय की।
अट्ठाईस प्रकृति नाशूँ इस मोहनीय की ।।

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छंद -अवतार)

जन्मादि रोग त्रय नाश, हित निज गुण गाऊँ।
शुभ-अशुभ विकारी भाव, पर मैं जय पाऊँ।।
कर मोहनीय का नाश, समकित गुण पाऊँ।
क्षय अट्ठाईस प्रकृति, करूँ निज सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

भव-तप हर चंदन शुद्ध, भावमयी लाऊँ।
शुभ-अशुभ विकारी भाव, पर मैं जय पाऊँ।।
कर मोहनीय का नाश, समकित गुण पाऊँ।
क्षय अट्ठाईस प्रकृति, करूँ निज सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं नि.।

अक्षय पद दाता शुद्ध, निज अक्षत लाऊँ।
शुभ-अशुभ विकारी भाव, पर मैं जय पाऊँ॥
कर मोहनीय का नाश, समकित गुण पाऊँ।
क्षय अट्ठाईस प्रकृति, करूँ निज सुख पाऊँ॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि.।

मैं काम-विनाशक पुष्प, चिन्मय के लाऊँ।
शुभ-अशुभ विकारी भाव, पर मैं जय पाऊँ॥
कर मोहनीय का नाश, समकित गुण पाऊँ।
क्षय अट्ठाईस प्रकृति, करूँ निज सुख पाऊँ॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि.।

मैं क्षुधारोग-क्षय हेतु, शुद्ध सुचरु लाऊँ।
शुभ-अशुभ विकारी भाव, पर मैं जय पाऊँ॥
कर मोहनीय का नाश, समकित गुण पाऊँ।
क्षय अट्ठाईस प्रकृति, करूँ निज सुख पाऊँ॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्य। क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।

मैं मोह तिमिर हर दीप, ज्ञान का ही लाऊँ।
शुभ-अशुभ विकारी भाव, पर मैं जय पाऊँ॥
कर मोहनीय का नाश, समकित गुण पाऊँ।
क्षय अट्ठाईस प्रकृति, करूँ निज सुख पाऊँ॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.।

मैं अष्टकर्म क्षय को, ध्यान अपना ध्याऊँ।
शुभ-अशुभ विकारी भाव, पर मैं जय पाऊँ॥
कर मोहनीय का नाश, समकित गुण पाऊँ।
क्षय अट्ठाईस प्रकृति, करूँ निज सुख पाऊँ॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।

फल मोक्ष प्राप्ति के हेतु, उत्तम फल लाऊँ।
शुभ-अशुभ विकारी भाव, पर मैं जय पाऊँ॥
कर मोहनीय का नाश, समकित गुण पाऊँ।
क्षय अट्ठाईस प्रकृति, करूँ निज सुख पाऊँ॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.।

पदवी अनर्घ्य हित अर्घ्य, भावमयी लाऊँ।
शुभ-अशुभ विकारी भाव, पर मैं जय पाऊँ॥
कर मोहनीय का नाश, समकित गुण पाऊँ।
क्षय अट्ठाईस प्रकृति, करूँ निज सुख पाऊँ॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अर्घ्यावलि

(दोहा)

मोहनीय की प्रकृति हैं, अट्ठाईस सुजान।
इनको नाशे बिन नहीं, होता केवलज्ञान॥
इनमें दर्शनमोह की, तीन प्रकृति दुखमूल।
चरित मोह पच्चीस हैं, मुक्ति-मार्ग में शूल॥

(वीरछन्द)

मोहनीय की है मिथ्यात्व प्रकृति भवसागर-दुख का मूल।
जो सम्यग्दर्शन पाते हैं वे करते इसको निर्मूल॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी॥१॥

ॐ ह्रीं मिथ्यात्वकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की सम्यक्त्व प्रकृति यह भी है मिथ्यात्व महान।
सम्यग्दर्शन धारण करके कर दूँगा इसका अवसान॥

मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी।।२।।

ॐ ह्रीं सम्यक्मिथ्यात्वकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अब सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति नाशूँगा नाथ सदा को ही।
इसके झाँसे में न आऊँगा मेरे नाथ कदा को ही।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी।।३।।

ॐ ह्रीं सम्यक्प्रकृतिकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की हास्य प्रकृति संपूर्ण विनाशूँ हे स्वामी।
हास्य भाव उपजे न कभी प्रभु यत्न करूँ अन्तर्यामी।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी।।४।।

ॐ ह्रीं हास्यकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की प्रकृति विनाशूँ रति नामक अब तो स्वामी।
पर में रति उपजे न कभी प्रभु करूँ यत्न अंतर्यामी।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी।।५।।

ॐ ह्रीं रतिकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की अरति प्रकृति को क्षय कर दूँ पूरी स्वामी।
अरति भाव उपजे न कभी भी करूँ यत्न अंतर्यामी।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी।।६।।

ॐ ह्रीं अरतिकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रकृति विनाशूँ मोहनीय की स्त्रीवेद अभी स्वामी।
वेद भाव सम्पूर्ण मिटाऊँ करूँ यत्न अन्तर्यामी।।

मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ।।७।।

ॐ ह्रीं स्त्रीवेदमोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

मोहनीय की प्रकृति विनाशूँ पुरुषवेद नामक स्वामी।
वेद भाव सम्पूर्ण मिटाऊँ करूँ यत्न अन्तर्यामी।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ।।८।।

ॐ ह्रीं पुरुषवेदमोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

प्रकृति नपुंसकवेद घोर दुखदायी नष्ट करूँ स्वामी।
वेद भाव सम्पूर्ण मिटाऊँ करूँ यत्न अन्तर्यामी।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी।।
ये कषाय के ही नव भेद विनाश करूँ अब तो भगवन।
जीतूँ प्रभु सम्पूर्ण मोह को प्राप्त करूँ अपना चिद्घन ।।९।।

ॐ ह्रीं नपुंसकवेदकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

मोहनीय की शोक प्रकृति सम्पूर्णतया नाशूँ स्वामी।
आर्त्त-ध्यानमय शोक न हो प्रभु यत्न करूँ अन्तर्यामी।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ।।१०।।

ॐ ह्रीं शोककर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

मोहनीय भय प्रकृति विनाशूँ निर्भय होकर हे स्वामी।
सप्तभयों से रहित बनूँ अब करूँ यत्न अन्तर्यामी।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ।।११।।

ॐ ह्रीं भयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

प्रकृति जुगुप्सा सर्व विनाशूँ अब मैं बन निर्मल स्वामी।
कभी ग्लानि का भाव हृदय में उपजे ना अन्तर्यामी॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी॥१२॥

ॐ ह्रीं जुगुप्साकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की अनन्तानुबंधी युत क्रोध प्रकृति कर नाश।
अकषायी स्वभाव है मेरा उसका ही अब करूँ प्रकाश॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी॥१३॥

ॐ ह्रीं अनन्तानुबंधीक्रोधकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की अनन्तानुबंधी युत मान प्रकृति कर नाश।
अकषायी स्वभाव है मेरा उसका ही अब करूँ प्रकाश॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतँगा अब अन्तर्यामी॥१४॥

ॐ ह्रीं अनन्तानुबंधीमानकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की अनन्तानुबंधी क्षय करूँ प्रकृति माया।
निज स्वरूप ऋजुता का सागर आज दृष्टि में दरशाया॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी॥१५॥

ॐ ह्रीं अनन्तानुबंधीमायाकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की अनन्तानुबंधी मय लोभ प्रकृति कर नाश।
अकषायी स्वभाव है मेरा उसका ही अब करूँ प्रकाश॥

मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ॥१६॥

ॐ ह्रीं अनन्तानुबंधीलोभाकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की अप्रत्याख्यानावरणी की क्रोध प्रकृति।
इसे समूल नष्ट करने को जाग उठी है मेरी मति॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ॥१७॥

ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यानवरणक्रोधकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद - प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की अप्रत्याख्यानावरणी की मान प्रकृति।
इसे समूल नष्ट करने को जाग उठी है मेरी मति॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ॥१८॥

ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यानावरणमानकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय अप्रत्याख्यानावरणी माया प्रकृति विनाश।
निजस्वरूप उज्ज्वल ऋजुतामय का प्रभु पाऊँ दिव्यप्रकाश॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ॥१९॥

ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यानावरणमायाकर्मविरहित श्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद -प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की अप्रत्याख्यानावरणी की लोभ प्रकृति।
इसे समूल नष्ट करने को जाग उठी है मेरी मति॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ॥२०॥

ॐ ह्रीं अप्रत्याख्यानावरणलोभकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की प्रत्याख्यानावरणी की यह क्रोध प्रकृति।
ज्ञान भाव से नष्ट करूँगा सावधान है मेरी मति॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी॥२१॥

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावरणक्रोधकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की प्रत्याख्यानावरणी की यह मान प्रकृति।
परम विनय से नष्ट करूँगा सावधान है मेरी मति॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी॥२२॥

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावरणमानकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय प्रत्याख्यानावरणी की माया प्रकृति विनाश।
ऋजुतापूर्वक नष्ट करूँगा पाऊँगा उर विमल प्रकाश॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी॥२३॥

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावरणमायाकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की प्रत्याख्यानावरणी की यह लोभ प्रकृति।
शौच भाव से नष्ट करूँगा सावधान है मेरी मति॥
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी॥२४॥

ॐ ह्रीं प्रत्याख्यानावरणलोभकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की प्रकृति संज्वलन क्रोध पूर्ण कर डालूँगा।
मुनि निर्ग्रन्थ स्वपद धारण कर क्षमा धर्म का करूँ प्रकाश॥

मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ।।२५।।

ॐ ह्रीं संज्वलनक्रोधकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की प्रकृति संज्वलन मान पूर्ण कर डालूँ नाश।
मुनि निर्ग्रन्थ स्वपद धारण कर क्षमा धर्म का करूँ प्रकाश।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ।।२६।।

ॐ ह्रीं संज्वलनमानकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की प्रकृति संज्वलन माया कर डालूँ नाश।
मुनि निर्ग्रन्थ स्वपद धारण कर क्षमा धर्म का करूँ प्रकाश।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्र मोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ।।२७।।

ॐ ह्रीं संज्वलनमायाकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मोहनीय की प्रकृति संज्वलन लोभ सदा को कर दूँ नाश।
मुनि निर्ग्रन्थ स्वपद धारण कर क्षमा धर्म का करूँ प्रकाश।।
मोहनीय का नाश करूँगा निज स्वभाव बल से स्वामी।
दर्शनमोह चारित्रमोह जीतूँगा अब अन्तर्यामी ।।२८।।

ॐ ह्रीं संज्वलनलोभकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

(वीरछन्द)

भेद कषाय मोहनीय के ये हैं सोलह भवदुखरूप।
इस सब भेदों से विरहित है शुद्ध आतमा निज चिद्रूप।।
तीन मोह के अरु पच्चीस कषायों की मिल अट्ठाईस।
नाश करूँ ये सकल प्रकृतियाँ हो जाऊँ मैं त्रिभुवन ईश।।
पहले दर्शन मोह विनाशूँ फिर चारित्र मोह कर नाश।
क्षीण मोह फल पाकर स्वामी पाऊँ केवलज्ञान प्रकाश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

महार्घ्य

(छंद - विजात)

मिला है समकित तो याद रखना स्वयं की श्रद्धा न जाने देना।
विभावी भावों की रात काली किसी गली से न आने देना ॥
स्वभाव कंचन के सम खरा है इसे मिलावट से दूर रखना।
सुमेरु जैसे अचल ही रहना न एक पल को भी डिगने देना ॥
बने बनाए महल गिरा दो ये रागवाले सदा-सदा को।
स्वरूप का ही सतत हो चिन्तन विकार उर में न आने देना ॥
ये कलमुँही है विभावी परिणति इसे कभी भी न संग रखना।
स्वभाव परिणति है मात्र अपनी स्वगीत इसको तुम गाने देना ॥
ये मोह का घर अभी जला दो मिटा दो इसको स्वबल से अपने।
स्वभाव अपना ही तुम सम्भालो जरा भी भय को न आने देना ॥

(दोहा)

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ, नष्ट करूँ मिथ्यात्व।
मुक्ति-मार्ग पर चल पड़ूँ, पा क्षायिक सम्यक्त्व ॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(छंद -विजया)

महामोह के जाल में तुम न फँसना।
महादुष्ट तुमको भ्रमित कर रहेगा ॥
तुम्हें स्वर्ग का लोभ देगा बहुत यह।
चलो संग मेरे ये तुम से कहेगा ॥
तुम्हें आज मुश्किल से समकित मिला है।
बहकना नहीं आत्मश्रद्धा से चेतन ॥
अगर तुमने अपनी स्वश्रद्धा को छोड़ा।
तो भव-कष्ट चेतन सदा ही रहेगा ॥
अगर देव-गुरु-धर्म पर आस्था है।
तो उपदेश उनका नहीं भूलना अब ॥

अगर भूल जाओगे तो सत्य मानो।
तुम्हारा ही निज आत्मा दुख सहेगा॥
सरल शान्ति धारा में अभिषेक कर लो।
सहज आत्मा का करो नित्य चिन्तन॥
विभावों के बादल घनेरे हटेंगे।
महल आस्रव का निमिष में ढहेगा॥
जो हैं पूर्व कर्मों के बंधन उन्हें अब।
हनन निर्जरा शीघ्र आकर करेगी॥
दशा शुद्ध निर्बन्ध होगी तुम्हारी।
सकल कर्म ईंधन स्वयं ही दहेगा॥
महामोक्ष-तरु-फल मिलेगा शिवम् मय।
निजानन्द आनन्द होगा सदा को॥
महामोह मर जाएगा एक पल में।
नहीं तुमसे फिर यह कभी कुछ कहेगा॥
अनन्तों गुणों से हो मण्डित सदा तुम।
महाशक्ति धारी अनाकुल स्वभावी॥
सतत अपनी शुद्धात्मा को ही निरखो।
यही आतमा तुमको उर में गहेगा॥
मिलेगा तुम्हें चक्र सिद्धों का अनुपम।
तुम्हें अपने भीतर सजाएगा तत्क्षण॥
त्रिलोकाग्र पर वास होगा तुम्हारा।
सदा पूर्ण सुख-सिन्धु उर में बहेगा॥

(दोहा)

दर्शन मोह विनाशकर, पाऊँ दृढ़ सम्यक्त्व।
चरित मोह फिर नष्ट कर, प्राप्त करूँ सिद्धत्व॥

ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं नि.।

(दोहा)

मोहनीय को क्षय करूँ, पाऊँ पद निर्वाण।
अपने ही बल से करूँ, मुक्ति-भवन निर्माण॥

इत्याशीर्वादः।

पूजन क्र. ७

आयुकर्म विरहित
श्री सिद्धपरमेष्ठी पूजन

स्थापना

(छंद - कुण्डलिया)

आयुकर्म का नाश कर, हुए सिद्ध भगवान।
बार-बार पूजन करूँ, पाऊँ पद निर्वाण।।

पाऊँ पद निर्वाण करूँ आतमा का चिन्तन।
चार प्रकृतियाँ नष्ट करूँ काटूँ भव-बंधन।।
ज्ञानपूर्वक आश्रय लूँ मैं आत्मधर्म का।
अब तो क्षय करना है स्वामी आयुकर्म का।।

ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छंद - चौपाई)

जन्म-जरादिक रोग मिटाऊँ, श्री सिद्ध प्रभु को नित ध्याऊँ।
आयुकर्म चौप्रकृति विनाशूँ, सूक्ष्मत्व गुण शीघ्र प्रकाशूँ।।
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

भवाताप-ज्वर शीघ्र मिटाऊँ, श्री सिद्ध प्रभु को नित ध्याऊँ।
आयुकर्म चौप्रकृति विनाशूँ, सूक्ष्मत्व गुण शीघ्र प्रकाशूँ।।
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं नि.।

शाश्वत अक्षय पद प्रकटाऊँ, श्री सिद्ध प्रभु को नित ध्याऊँ।
आयुकर्म चौप्रकृति विनाशूँ, सूक्ष्मत्व गुण शीघ्र प्रकाशूँ॥
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि./

कामबाण की पीर मिटाऊँ, श्री सिद्ध प्रभु को नित ध्याऊँ।
आयुकर्म चौप्रकृति विनाशूँ, सूक्ष्मत्व गुण शीघ्र प्रकाशूँ॥
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि./

क्षुधारोग का कष्ट मिटाऊँ, श्री सिद्ध प्रभु को नित ध्याऊँ।
आयुकर्म चौप्रकृति विनाशूँ, सूक्ष्मत्व गुण शीघ्र प्रकाशूँ॥
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि./

मोह-तिमिर अज्ञान हटाऊँ, श्री सिद्ध प्रभु को नित ध्याऊँ।
आयुकर्म चौप्रकृति विनाशूँ, सूक्ष्मत्व गुण शीघ्र प्रकाशूँ॥
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि./

अष्टकर्म सम्पूर्ण जलाऊँ, श्री सिद्ध प्रभु को नित ध्याऊँ।
आयुकर्म चौप्रकृति विनाशूँ, सूक्ष्मत्व गुण शीघ्र प्रकाशूँ॥
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि./

पूर्ण मोक्षफल हे प्रभु पाऊँ, श्री सिद्ध प्रभु को नित ध्याऊँ।
आयुकर्म चौप्रकृति विनाशूँ, सूक्ष्मत्व गुण शीघ्र प्रकाशूँ॥
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महामोक्षफलप्राप्तये फलं नि./

शाश्वत पद अनर्घ्य प्रकटाऊँ, श्री सिद्ध प्रभु को नित ध्याऊँ।
आयुकर्म चौप्रकृति विनाशूँ, सूक्ष्मत्व गुण शीघ्र प्रकाशूँ॥
ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

अर्घ्यावलि

(दोहा)

आयुकर्म की प्रकृतियाँ, दुखमय घोर प्रसिद्ध।
इनके क्षय बिन तो नहीं, होता कोई सिद्ध॥

(वीरछन्द)

नरक आयु अति दुखदायी है सातों नरक महादुखरूप।
नरक आयु क्षय करने का ही यत्न करूँगा निज अनुरूप॥
आयुकर्म की सर्व प्रकृतियाँ मुझको ही क्षय करना है।
सूक्ष्मत्व गुण पाने को प्रभु इन्हें शीघ्र ही हरना है॥१॥

ॐ ह्रीं नरकायुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

आयु तिर्यञ्च घोर दुखदायी है निगोद तक की दाता।
इसको क्षय करने का निश्चय जिन-आगम में विख्याता॥
आयुकर्म की सर्व प्रकृतियाँ मुझको ही क्षय करना है।
सूक्ष्मत्व गुण पाने को प्रभु इन्हें शीघ्र ही हरना है॥२॥

ॐ ह्रीं तिर्यञ्चायुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

मनुज आयु भी भव दुखमय है बोध-अबोध दशा होती।
इसके क्षय बिन कभी नहीं चेतन की सिद्ध दशा होती॥
आयुकर्म की सर्व प्रकृतियाँ मुझको ही क्षय करना है।
सूक्ष्मत्व गुण पाने को प्रभु इन्हें शीघ्र ही हरना है॥३॥

ॐ ह्रीं मनुष्यायुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

देव आयु भी क्षणभंगुर दुख देती आई विविध प्रकार।
इसके क्षय बिन कभी नहीं पा सकता प्राणी सौख्य अपार॥
आयुकर्म की सर्व प्रकृतियाँ मुझको ही क्षय करना है।
सूक्ष्मत्व गुण पाने को प्रभु इन्हें शीघ्र ही हरना है॥४॥

ॐ ह्रीं देवायुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

महार्घ्य

(छंद - समानसवैया)

जड़ तन पाँचों इन्द्रिय द्वारा इस चेतन को पा न सकोगे।
वर्ण गंध रस पर्श शब्द से भी चेतन को ध्या न सकोगे॥
जड़ काया से पूर्ण पृथक् है दर्शन ज्ञानमयी अशरीरी।
जिन स्वभाव की महिमा से है इसकी रंच न पल भर दूरी॥
यदि चेतन को पाना है तो फिर चेतन से परिचय करना।
आयुकर्म क्षय करना है तो पहले निज का निर्णय करना॥
भवपथ से यदि ऊबे हो तो शिवपथ पर जल्दी आ जाओ।
अनुभव सागर में अब डुबकी लगा रत्न अपने ले आओ॥
बिन पुरुषार्थ सफल होता है नहीं अरे पुरुषार्थ कभी भी।
अभूतार्थ को तजे बिना मिलता न अरे भूतार्थ कभी भी॥

(दोहा)

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ, आयुकर्म कर नाश।
सूक्ष्मत्व गुण प्रकट कर, पाऊँ आत्मनिवास॥

ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

मिथ्यात्व-हवा का झोंका प्रतिपल चलता रहता है।
बहु भव-बंधन कर प्राणी चारों गति में बहता है॥
कोई न बचाने पाता ऐसा है यह मिथ्याभ्रम।
वह ही बच पाता है जो करता है ज्ञान परिश्रम॥
इस श्रम के द्वारा प्राणी सम्यग्दर्शन पाता है।
निधि भेद-ज्ञान की अपने अन्तर्मन में लाता है॥

है संग दुष्ट अविरति का पर संयम की अभिलाषा।
कर प्राप्त संयमासंयम पूरी करता है आशा।।
फिर संयम पूर्ण धारता सप्तम षष्टम में जाता।
झूले पर झूला करता फिर श्रेणी पर चढ़ जाता।।
उपशम श्रेणी पाता तो ग्यारहवें से गिर जाता।
क्षायिक श्रेणी पाता तो बारहवाँ ही प्रकटाता।।
कर मोह क्षीण सारा ही तेरहवाँ पा लेता है।
अरहंत दशा प्रकटाकर जगती को सुख देता है।।
फिर चौदहवाँ पा लेता पश्चात् सिद्ध होता है।
सिद्धत्व स्वगुण झट पाकर संसार सर्व खोता है।।
यों आयुकर्म को क्षय कर निज शिव पद पा लेता है।
आठों कर्म से विरहित हो शाश्वत सुख लेता है।।

ॐ ह्रीं आयुकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा

आशीर्वाद

(दोहा)

आयुकर्म को क्षय करूँ, चहुँगति कर अवसान।
अपने ही बल से करूँ, मुक्ति-भवन निर्माण।।

इत्याशीर्वादः।

❖❖❖

आयो-आयो रे हमारो बड़ो भाग्य कि हम आए पूजन को।
पूजन को प्रभु दर्शन को, पावन प्रभु-पद पर्शन को को।।टेक।।
जिनवर की अन्तर्मुख मुद्रा आतम दर्श कराती।
मोह महामल प्रक्षालन कर शुद्ध स्वरूप दिखाती।।१।।
भव्य अकृत्रिम चैत्यालय की जग में शोभा भारी।
मंगल ध्वज ले सुरपति आए शोभा जिसकी न्यारी।।२।।

पूजन क्र. ८

नामकर्म विरहित श्री सिद्धपरमेष्ठी पूजन

स्थापना

(छंद - कुण्डलिया)

नामकर्म का नाश कर, हुए सिद्ध भगवान।
नाशी प्रकृति तिरानवे, जय जय जय भगवान॥
जय जय जय भगवान आत्मा को ही ध्याऊँ।
आप कृपा शिवसुख पाने को निज गुण गाऊँ॥
निज गुण गाऊँ आश्रय लूँ मैं आत्मधर्म का।
निश्चित नाश करूँगा अब मैं नामकर्म का॥

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(दोहा)

जन्म-मरण दुख क्षय करूँ, दो प्रभु यह आशीष।
ज्ञान नीर अर्पित करूँ, जय जय सिद्ध महीश॥
नामकर्म की तिरानवे, प्रकृति विनाशक सिद्ध।
अवगाहन गुण के धनी, सिद्ध महान प्रसिद्ध॥

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

भव-आतप का नाश कर, नष्ट करूँ भव-रोग।
शीतल चंदन भेंटकर, पाऊँ धर्म-सुयोग॥
नामकर्म की तिरानवे, प्रकृति विनाशक सिद्ध।
अवगाहन गुण के धनी, सिद्ध महान प्रसिद्ध॥

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं नि.।

अक्षय पद की प्राप्ति हित, करूँ स्वयं का ध्यान।
उत्तम अक्षत भेंटकर, पाऊँ पद अमलान।।
नामकर्म की तिरानवे, प्रकृति विनाशक सिद्ध।
अवगाहन गुण के धनी, सिद्ध महान प्रसिद्ध।।

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि.।

कामबाण के नाश हित, स्वगुण पुष्प बलवान।
महाशील गुण प्राप्त कर, हो जाऊँ भगवान।।
नामकर्म की तिरानवे, प्रकृति विनाशक सिद्ध।
अवगाहन गुण के धनी, सिद्ध महान प्रसिद्ध।।

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि.।

क्षुधारोग प्रभु क्षय करूँ, तज दूँ कर्माहार।
सुचरु प्राप्त कर ज्ञानमय, हो जाऊँ अविकार।।
नामकर्म की तिरानवे, प्रकृति विनाशक सिद्ध।
अवगाहन गुण के धनी, सिद्ध महान प्रसिद्ध।।

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।

दीप चढ़ाऊँ ज्ञान के, मिथ्या-तिमिर निवार।
केवलज्ञान महान पा, नाश करूँ संसार।।
नामकर्म की तिरानवे, प्रकृति विनाशक सिद्ध।
अवगाहन गुण के धनी, सिद्ध महान प्रसिद्ध।।

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.।

शुक्ल ध्यान की धूप से, करूँ कर्म अवसान।
उत्तम सुख की प्राप्ति हित, पाऊँ पद निर्वाण।।
नामकर्म की तिरानवे, प्रकृति विनाशक सिद्ध।
अवगाहन गुण के धनी, सिद्ध महान प्रसिद्ध।।

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।

पूर्ण मोक्षफल प्राप्ति हित, पाऊँ सम्यग्ज्ञान।
बाधक कारण मोक्ष के, शीघ्र करूँ अवसान॥
नामकर्म की तिरानवे, प्रकृति विनाशक सिद्ध।
अवगाहन गुण के धनी, सिद्ध महान प्रसिद्ध॥

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.।

पद अनर्घ्य की प्राप्ति हित, लूँ निश्चय भूतार्थ।
निज गुण अर्घ्य सजा प्रभो, पाऊँ निज परमार्थ॥
नामकर्म की तिरानवे, प्रकृति विनाशक सिद्ध।
अवगाहन गुण के धनी, सिद्ध महान प्रसिद्ध॥

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अर्घ्यावलि

(दोहा)

नामकर्म की प्रकृतियाँ, तेरानवे प्रसिद्ध।
कोई भी होता नहीं, इनके क्षय बिन सिद्ध॥

(छंद - ताटंक)

नामकर्म की चार प्रकृतियाँ गति नामक भवदुख दायक।
पहली प्रकृति नरक गति नाशूँ निज पद पाऊँ सुखदायक॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥१॥

ॐ ह्रीं नरकगतिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

द्वितीय प्रकृति तिर्यञ्च विनाशूँ जो है भवदुखदायी शूल।
वध बंधन छेदन-भेदन की बहु पीड़ा का दुखमय मूल॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२॥

ॐ ह्रीं तिर्यञ्चगतिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

तृतीय प्रकृति गति मनुष्य नाशूँ जो निजात्मा के प्रतिकूल।
बिन संयम के पूर्ण व्यर्थ है भवदुखदायी है यह शूल॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥३॥

ॐ ह्रीं मनुष्यगतिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

चौथी प्रकृति देवगति नाशूँ लोभ कषायमयी प्रतिकूल।
माला कब मुरझाएगी यह रहता सदा हृदय में शूल॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥४॥

ॐ ह्रीं देवगतिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

पंच शरीर प्राप्त कर मैंने दुख पाए हैं अपरम्पार।
औदारिक तन प्रकृति विनाशूँ फिर न भ्रमूँगा प्रभु संसार॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥५॥

ॐ ह्रीं औदारिकशरीरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि./

प्रभु वैक्रियक शरीर प्राप्त कर भी दुख पाए घोर अनंत।
प्रकृति वैक्रियक नाश करूँगा हो जाऊँगा मैं भगवंत॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥६॥

ॐ ह्रीं वैक्रियिकशरीरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

आँहारक तन भी न लाभप्रद मुनि बन करके जो पाया।
इसका भी मैं नाश करूँगा यह विचार उर को भाया॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥७॥

ॐ ह्रीं आहारकशरीरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

तैजस प्रकृति सतत बाधक है नहीं छोड़ती मेरा साथ।
इसको क्षय करने का निश्चय मुझे सुहाया है हे नाथ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८॥

ॐ ह्रीं तैजसशरीरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कार्माण तन पाकर मैंने प्रभु अनादि से दुख पाया।
कार्माण तन क्षय करने का अब अलभ्य अवसर पाया॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥९॥

ॐ ह्रीं कार्मणशरीरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रभु एकेन्द्रिय जाति प्रकृति का नाश करूँ ऐसा दो ज्ञान।
पाँच भेद हैं जाति नाम के इनका कर डालूँ अवसान॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥१०॥

ॐ ह्रीं एकेन्द्रियजातिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रभु दो इन्द्रिय जाति प्रकृति का नाश करूँ ऐसा दो ज्ञान।
पाँच भेद हैं जाति नाम के इनका कर डालूँ अवसान॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥११॥

ॐ ह्रीं द्वीन्द्रियजातिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रभु त्रय इन्द्रिय जाति प्रकृति का नाश करूँ ऐसा दो ज्ञान।
पाँच भेद हैं जाति नाम के इनका कर डालूँ अवसान॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥१२॥

ॐ ह्रीं त्रीन्द्रियजातिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रभु चौ इन्द्रिय जाति प्रकृति का नाश करूँ ऐसा दो ज्ञान।
पाँच भेद हैं जाति नाम के इनका कर डालूँ अवसान॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥१३॥

ॐ ह्रीं चतुरिन्द्रियजातिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रभु पंचेन्द्रिय जाति प्रकृति का नाश करूँ ऐसा दो ज्ञान।
पाँच भेद हैं जाति नाम के इनका कर डालूँ अवसान॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥१४॥

ॐ ह्रीं पंचेन्द्रियजातिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अंगोपांग जु भेद तीन हैं नामकर्म के बहु विख्यात।
अशरीरी चेतन स्वरूप का करते रहते हैं ये घात॥
औदारिक शरीरांगोपांग प्रकृति मुझे क्षय करना है।
अंगोपांग भेद त्रय दुखमय हे प्रभु मुझको हरना है॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥१५॥

ॐ ह्रीं औदारिकआंगोपांगनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

वैक्रियक शरीरांगोपांग प्रकृति मुझे क्षय करना है।
अंगोपांग भेद त्रय दुखमय हे प्रभु मुझको हरना है॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥१६॥

ॐ ह्रीं वैक्रियकआंगोपांग नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

आहारक शरीरांगोपांग प्रकृति मुझे क्षय करना है।
अंगोपांग भेद त्रय दुखमय हे प्रभु मुझको हरना है॥

नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥१७॥

ॐ ह्रीं आहारकांगोपांगनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

बन्धन नाम जु कर्म उदय से होता बन्धन नाम जु कर्म।
पुद्गल स्कन्धों का मिलना पंच भेद हैं प्रकृति जु कर्म॥
अंग हाथ दो भाव पीठ वक्षस्थल नितम्ब अरु मस्तक।
अंगुली कान नाक आदि ये उपांग कहलाते तन तक॥
कर्मोदय से अंगोपांगों का होता रहता निर्माण।
इस निर्माण प्रकृति का स्वामी मुझको करना है अवसान॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥१८॥

ॐ ह्रीं निर्माणनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

औदारिक बन्धन की प्रकृति विनाश करूँ अन्तर्यामी।
पाँचों बन्धन क्षय कर दूँ प्रभु ऐसा बल दो हे स्वामी॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥१९॥

ॐ ह्रीं औदारिकबंधननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

वैक्रियक बंधन की प्रकृति विनाश करूँ अन्तर्यामी।
पाँचों बंधन क्षय कर दूँ प्रभु ऐसा बल दो हे स्वामी॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२०॥

ॐ ह्रीं वैक्रियिकबंधननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

आहारक बंधन की प्रकृति विनाश करूँ अन्तर्यामी।
पाँचों बंधन क्षय कर दूँ प्रभु ऐसा बल दो हे स्वामी॥

नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२१॥

ॐ ह्रीं आहारकबंधननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अब तैजस बंधन की प्रकृति विनाश करूँ अन्तर्यामी।
पाँचों बंधन क्षय कर दूँ प्रभु ऐसा बल दो हे स्वामी॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२२॥

ॐ ह्रीं तैजसबंधननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कार्माण बंधन की प्रकृति विनाश करूँ अन्तर्यामी।
पाँचों बंधन क्षय कर दूँ प्रभु ऐसा बल दो हे स्वामी॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवें भवदुख मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२३॥

ॐ ह्रीं कार्मणबंधननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

औदारिक संघात प्रकृति को क्षय कर आत्मप्रकाश करूँ।
अब संघात नामकर्म की पाँच प्रकृतियाँ नाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२४॥

ॐ ह्रीं औदारिकसंघातनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

वैक्रियक संघात प्रकृति को क्षयकर आत्मप्रकाश करूँ।
अब संघात नाम कर्म की पाँच प्रकृतियाँ नाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२५॥

ॐ ह्रीं वैक्रियकसंघातनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

आहारक संघात कर्म की प्रकृति नाथ मैं नाश करूँ।
अब संघात नामकर्म की पाँच प्रकृतियाँ नाश करूँ॥

नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२६॥

ॐ ह्रीं आहारकसंघातनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अब तैजस संघात कर्म की प्रकृति प्रसिद्ध विनाश करूँ।
अब संघात नामकर्म की पाँच प्रकृतियाँ नाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२७॥

ॐ ह्रीं तैजससंघातनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कार्माण संघात कर्म की प्रकृति प्रसिद्ध विनाश करूँ।
अब संघात नामकर्म की पाँच प्रकृतियाँ नाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२८॥

ॐ ह्रीं कार्माणसंघातनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रभु संस्थान नामकर्म के छह भेदों को नाश करूँ।
समचतुरस्र संस्थान की प्रकृति तुरन्त विनाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥२९॥

ॐ ह्रीं समचतुरस्रसंस्थाननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान प्रकृति का अब प्रभु नाश करूँ।
प्रभु संस्थान नामकर्म के छह भेदों को नाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥३०॥

ॐ ह्रीं न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रकृति स्वातिसंस्थान स्वबल से हे स्वामी मैं नाश करूँ।
प्रभु संस्थान नामकर्म के छह भेदों का नाश करूँ ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥३१॥

ॐ ह्रीं स्वातिसंस्थाननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कुब्जक संस्थान की हे प्रभु प्रकृति आज मैं नाश करूँ।
प्रभु संस्थान नामकर्म के छह भेदों को नाश करूँ ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥३२॥

ॐ ह्रीं कुब्जकसंस्थाननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

वामन संस्थान की हे प्रभु प्रकृति आज मैं नाश करूँ।
प्रभु संस्थान नामकर्म के छह भेदों को नाश करूँ ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥३३॥

ॐ ह्रीं वामनसंस्थाननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

हुण्डक संस्थान की हे प्रभु प्रकृति आज मैं नाश करूँ।
प्रभु संस्थान नामकर्म के छह भेदों को नाश करूँ ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥३४॥

ॐ ह्रीं हुंडकसंस्थाननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

संहनन नामकर्म के छह भेदों की सत्ता नाश करूँ।
वज्रवृषभ नाराच संहनन का भी पूर्ण विनाश करूँ ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥३५॥

ॐ ह्रीं वज्रवृषभनाराचसंहनननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

तथा वज्र नाराच संहनन की मैं प्रकृति नाश करूँ।
संहनन नामकर्म छह भेदों की सत्ता मैं नाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥३६॥

ॐ ह्रीं वज्रनाराचसंहनननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रभु नाराच संहनन की भी प्रकृति प्रसिद्ध विनाश करूँ।
संहनन नामकर्म छह भेदों की सत्ता मैं नाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥३७॥

ॐ ह्रीं नाराचसंहनननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रकृति अर्द्ध नाराच संहनन का भी पूर्ण विनाश करूँ।
संहनन नामकर्म छह भेदों की सत्ता मैं नाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥३८॥

ॐ ह्रीं अर्द्धनाराचसंहनननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अब कीलित संहनन प्रकृति का हे स्वामी मैं नाश करूँ।
संहनन नामकर्म छह भेदों की सत्ता मैं नाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥३९॥

ॐ ह्रीं कीलितसंहनननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

असंप्राप्त सृपाटिका संहनन प्रकृति का मैं नाश करूँ।
संहनन नामकर्म छह भेदों की सत्ता मैं नाश करूँ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥

प्रथम द्वितीय तृतीय काल में प्रथम संहनन होता है।
काल चतुर्थम छह प्रकार का संहनन सदा ही होता है॥
पंचम काल तीन संहनन छठे एक संहनन प्रसिद्ध।
विकलत्रय चौ इन्द्रिय इक-इक एकेन्द्रिय संहनन सुसिद्ध॥४०॥

ॐ ह्रीं असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

आनुपूर्व्य की चार प्रकृतियाँ हे प्रभु नाश करूँगा मैं।
नरक गत्यानुपूर्व प्रकृति को निश्चित नाथ हरूँगा मैं॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवें भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥४१॥

ॐ ह्रीं नरकगत्यानुपूर्वनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

आनुपूर्व्य की चार प्रकृतियाँ हे प्रभु नाश करूँगा मैं।
तिर्यग्गत्यानुपूर्व प्रकृति को निश्चित नाथ हरूँगा मैं॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥४२॥

ॐ ह्रीं तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

आनुपूर्व्य की चार प्रकृतियाँ हे प्रभु नाश करूँगा मैं।
मनुष्यगत्यानुपूर्व प्रकृति को निश्चित नाथ हरूँगा मैं॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥४३॥

ॐ ह्रीं मनुष्यगत्यानुपूर्वनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

आनुपूर्व्य की चार प्रकृतियाँ हे प्रभु नाश करूँगा मैं।
देवगत्यानुपूर्व की प्रकृति को निश्चित नाथ हरूँगा मैं॥

नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥४४॥
ॐ ह्रीं देवगत्वानुपूर्वनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कोमल प्रकृति विनाश करूँ मैं ज्ञानभाव का करूँ प्रकाश।
अब स्पर्श नामकर्म के आठ भेद सब करूँ विनाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥४५॥
ॐ ह्रीं कोमलस्पर्शनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रकृति कठोर विनाश करूँ मैं ज्ञानभाव का करूँ प्रकाश।
अब स्पर्श नाम कर्म के आठ भेद सब कर दूँ नाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥४६॥
ॐ ह्रीं कठोरस्पर्शनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

भारी या गुरु प्रकृति नाशकर ज्ञानभाव का करूँ प्रकाश।
अब स्पर्श नामकर्म के आठ भेद सब कर दूँ नाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥४७॥
ॐ ह्रीं भारीस्पर्शनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

लघु या हलकी प्रकृति नाशकर ज्ञानभाव का करूँ प्रकाश।
अब स्पर्श नामकर्म के आठ भेद सब कर दूँ नाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवें भवदुख मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥४८॥
ॐ ह्रीं लघुस्पर्शनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

शीत प्रकृति स्पर्श कर्म की निज बल से मैं करूँ विनाश।
अब स्पर्श नामकर्म के आठ भेद सब कर दूँ नाश॥

नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥४९॥

ॐ ह्रीं शीतस्पर्शनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

उष्ण प्रकृति स्पर्श कर्म की निज बल से मैं करूँ विनाश।
अब स्पर्श नामकर्म के आठ भेद सब कर दूँ नाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥५०॥

ॐ ह्रीं उष्णस्पर्शनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रभु स्निग्ध स्पर्श कर्म की निज बल से मैं करूँ विनाश।
अब स्पर्श नामकर्म के आठ भेद सब कर दूँ नाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥५१॥

ॐ ह्रीं स्निग्धस्पर्शनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

रुक्ष प्रकृति स्पर्श कर्म की निज बल से मैं करूँ विनाश।
अब स्पर्श नामकर्म के आठ भेद सब कर दूँ नाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥५२॥

ॐ ह्रीं रुक्षस्पर्शनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कषाय प्रकृति है नामकर्म की इसका भी अब करूँ विनाश।
अब रस नामकर्म की पाँचों प्रकृति नाथ सब कर दूँ नाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥५३॥

ॐ ह्रीं कषायरसनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

आम्ल प्रकृति है नामकर्म की इसका भी अब करूँ विनाश।
अब रस नामकर्म की पाँचों प्रकृति नाथ सब कर दूँ नाश॥

नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥५४॥

ॐ ह्रीं आम्लरसनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

मधुर प्रकृति है नामकर्म की इसका भी अब करूँ विनाश।
अब रस नामकर्म की पाँचों प्रकृति नाथ सब कर दूँ नाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥५५॥

ॐ ह्रीं मधुररसनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

तिक्त प्रकृति रस नामकर्म की इसका भी मैं करूँ विनाश।
अब रस नाम कर्म की पाँचों प्रकृति नाथ सब कर दूँ नाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥५६॥

ॐ ह्रीं तिक्तरसनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कटुक प्रकृति रस नामकर्म की इसका भी मैं करूँ विनाश।
अब रस नामकर्म की पाँचों प्रकृति नाथ सब कर दूँ नाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥५७॥

ॐ ह्रीं कटुकरसनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

गन्ध प्रकृति दोनों ही नाशूँ पाऊँ निर्मल आत्मप्रकाश।
इस दुर्गन्ध प्रकृति को नाशूँ पाऊँ मैं निर्ग्रन्थ निवास॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥५८॥

ॐ ह्रीं दुर्गंधनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

नाथ सुगन्ध प्रकृति को नाशूँ पाऊँ निर्मल आत्मप्रकाश।
गन्ध प्रकृति दोनों ही नाशूँ पाऊँ मैं निर्ग्रन्थ निवास॥

नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥५९॥

ॐ ह्रीं सुगंधनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

नील वर्ण की प्रकृति विनाशूँ पाऊँ उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश।
वर्ण प्रकृति है नामकर्म की पाँचों का मैं करूँ विनाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥६०॥

ॐ ह्रीं नीलवर्णनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

शुक्ल वर्ण की प्रकृति विनाशूँ पाऊँ उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश।
वर्ण प्रकृति है नामकर्म की पाँचों का मैं करूँ विनाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥६१॥

ॐ ह्रीं शुक्लवर्णनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

कृष्ण वर्ण की प्रकृति विनाशूँ पाऊँ उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश।
वर्ण प्रकृति है नामकर्म की पाँचों का मैं करूँ विनाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥६२॥

ॐ ह्रीं कृष्णवर्णनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

रक्त वर्ण की प्रकृति विनाशूँ पाऊँ उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश।
वर्ण प्रकृति है नामकर्म की पाँचों का मैं करूँ विनाश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥६३॥

ॐ ह्रीं रक्तवर्णनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

पीत वर्ण की प्रकृति विनाशूँ पाऊँ उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश।
वर्ण प्रकृति है नामकर्म की पाँचों का मैं करूँ विनाश॥

नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥६४॥

ॐ ह्रीं पीतवर्णनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अगुरुलघु नामकर्म की प्रकृति विनाशूँ हे भगवान।
भारी अथवा हलका नहीं कभी भी होऊँ रहूँ समान ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥६५॥

ॐ ह्रीं अगुरुलघुनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

घातक अंगोपांग न पाऊँ मैं उपघात प्रकृति नाशूँ।
कर्मोदय में जागृत रहकर आत्मतत्त्व निज परकाशूँ ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥६६॥

ॐ ह्रीं उपघातनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

पर की घातक अंगोपांग प्रकृति परघात विनाश करूँ।
कर्मोदय में जागृत रहकर आत्मतत्त्व में वास करूँ ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥६७॥

ॐ ह्रीं परघातनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

आतप प्रकृति उदय से ही होती हैं शरीर में आतप प्राप्ति।
इसका नाश करूँ मैं स्वामी परम शान्ति की हो उर व्याप्ति ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥६८॥

ॐ ह्रीं आतपनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

तन उद्योत प्रभा दाता है यह उद्योत नाम का कर्म।
इसे विनाशूँ आत्मध्यान से हो जाऊँगा मैं निष्कर्म ॥

नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥६९॥

ॐ ह्रीं उद्योतनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से इस शरीर में होता है सदैव उच्छ्वास।
यह उच्छ्वास प्रकृति मैं नाशूँ पाऊँ अपना ज्ञानप्रकाश ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥७०॥

ॐ ह्रीं श्वासोच्छ्वासनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्मोदय से होता है आकाश गमन प्रशस्त प्रभो।
प्रकृति विहायोगति प्रशस्त को अब तो नाशूँ महा-विभो ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥७१॥

ॐ ह्रीं प्रशस्तविहायोगतिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्मोदय में अप्रशस्त आकाश गमन होता स्वामी।
अप्रशस्त प्रकृति विहायोगति को नाशूँ हे स्वामी ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥७२॥

ॐ ह्रीं अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्मोदय से इक शरीर का स्वामी एक जीव होता।
यह प्रत्येक प्रकृति क्षय करके प्राणी पूर्ण सुखी होता ॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल ॥७३॥

ॐ ह्रीं प्रत्येकनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्मोदय में इस शरीर के स्वामी बहुत जीव होते।
साधारण शरीर प्रकृति यह क्षय कर जीव सुखी होते॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥७४॥

ॐ ह्रीं साधारणनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्मोदय से द्वय त्रय चउ पंचेन्द्रिय में होता है जन्म।
यह त्रस प्रकृति विनाश करूँ मैं फिर न कभी लूँ हे प्रभु जन्म॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥७५॥

ॐ ह्रीं त्रसनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्मोदय से स्थावर तनधारी हो जाता प्राणी।
यह स्थावर प्रकृति विनाशूँ हो जाऊँ मैं भी ज्ञानी॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥७६॥

ॐ ह्रीं स्थावरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से अन्य जीव को होता अपने प्रति राग।
सुभग प्रकृति यह क्षयकर डालूँ करूँ आत्मा से अनुराग॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥७७॥

ॐ ह्रीं सुभगनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से अन्य जीव अपने प्रति करते रहते द्वेष।
नामकर्म की दुर्भग प्रकृति विनाश करूँ बन निर्ग्रन्थेश॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥७८॥

ॐ ह्रीं दुर्भगनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से मधुर सुरी मृदु स्वर हो जाता है स्वामी।
नामकर्म की सुस्वर प्रकृति विनाश करूँ अन्तर्यामी॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥७९॥

ॐ ह्रीं सुस्वरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से कटु कठोर स्वर हो ही जाता है स्वामी।
नामकर्म की दुःस्वर प्रकृति विनाश करूँ अन्तर्यामी॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८०॥

ॐ ह्रीं दुःस्वरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से तन के अवयव सुन्दर होते हैं स्वामी।
नामकर्म की यही शुभ प्रकृति क्षय करना है हे स्वामी॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८१॥

ॐ ह्रीं शुभनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से तन के अवयव होते कभी नहीं मनहर।
नामकर्म की अशुभ प्रकृति मुझको क्षय करना है सत्वर॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८२॥

ॐ ह्रीं अशुभनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से कहीं न रुकनेवाला तन होता है प्राप्त।
सूक्ष्म शरीर नामकर्म की प्रकृति विनाशूँ हे प्रभु आप्त॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८३॥

ॐ ह्रीं सूक्ष्मनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से बादर या स्थूल देह हो जाती प्राप्त।
बादर शरीर नामकर्म की प्रकृति विनाशूँ हे जिन आप्त॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवें भवदुख मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८४॥

ॐ ह्रीं बादरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

कर्म उदय से अपने योग्य सदा पर्याप्ति पूर्ण होती।
यह पर्याप्ति नामकर्म की प्रकृति ज्ञान से क्षय होती॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८५॥

ॐ ह्रीं पर्याप्तिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

कर्म उदय से अपर्याप्ति परिपूर्ण नहीं होने पाती।
नामकर्म की अपर्याप्ति प्रकृति ज्ञान से क्षय पाती॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८६॥

ॐ ह्रीं अपर्याप्तिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

कर्म उदय से सभी धातु उपधातु देह में थिर रहती।
स्थिर नामकर्म की प्रकृति क्षीण आत्मबल से होती॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८७॥

ॐ ह्रीं स्थिरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

कर्म उदय से सभी धातु उपधातु न तन में थिर रहती।
अस्थिर नामकर्म की प्रकृति नाश आत्मबल से होती॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८८॥

ॐ ह्रीं अस्थिरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि./

कर्म उदय से इस शरीर में सुन्दर प्रभा प्रकट होती।
नामकर्म आदेय प्रकृति यह क्षीण आत्मबल से होती॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥८९॥

ॐ ह्रीं आदेयनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से इस शरीर में प्रभा नहीं होने पाती।
नामकर्म की अनादेय प्रकृति स्वबल से क्षय पाती॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥९०॥

ॐ ह्रीं अनादेयनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से जग में बहुत प्रशंसा होती प्राणी की।
यशकीर्ति यह प्रकृति विनाशूँ शरण प्राप्त हो ज्ञानी की॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥९१॥

ॐ ह्रीं यशकीर्तिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

कर्म उदय से जग में निन्दा होती है इस प्राणी की।
अयशकीर्ति यह प्रकृति विनाशूँ शरण प्राप्त कर ज्ञानी की॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥९२॥

ॐ ह्रीं अयशकीर्तिनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रभु तीर्थंकर नाम कर्म से तीर्थंकर पद होता प्राप्त।
वह तीर्थंकर प्रकृति विनाशूँ सिद्ध स्वपद हो मुझको प्राप्त॥
जबतक तीर्थंकर पद रहता है सिद्ध दशा न प्राप्त होती।
चउ अघातिया शेष अतः सिद्धत्व प्रभा न व्याप्त होती॥
नामकर्म की सर्व प्रकृतियाँ हैं तिरानवे भवदुख-मूल।
निज पुरुषार्थ शक्ति से सबको नाश करूँ मैं नाथ समूल॥९३॥

ॐ ह्रीं तीर्थंकरनामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

महार्घ्य

(छंद - ताटंक)

भव-अटवी के अँधियारे में तुम दीपक मेरे स्वामी।
मुझे अधोगतियों से आप बचाते हो अन्तर्यामी।।
मन के अँधियारे को क्षयकर पूर्ण प्रकाश आप देते।
खोटे कृत्यों के करने से सदा रोकते प्रभु नामी।।
मेरी नैया भवसागर में डूब रही है त्रिभुवन पति।
मुझे उबारो आप कृपा से बन जाऊँ मैं निष्कामी।।
अजर अमर अविकल पद पाऊँ नाथ मुझे ऐसा वर दो।
प्रभो आप को जपूँ निरन्तर बन जाऊँ मैं ध्रुवधामी।।
नामकर्म का नाश करूँ मैं नाथ मुझे अपना बल दो।
मोक्षमार्ग पर चलूँ निरन्तर हो जाऊँ शिवपथ गामी।।

(दोहा)

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ, करूँ आत्म-कल्याण।
नामकर्म का नाश कर, पाऊँ पद निर्वाण।।

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(वीरछन्द)

रूप गंध रस स्पर्श सहित पुद्गल परमाणु विचित्र स्वरूप।
इससे भिन्न आत्मा अपना एक मात्र चेतन चिद्रूप।।
पूर्णानन्द नाथ तू ही है ज्ञानानन्द स्वरूप महान।
गुण अनन्त पति शक्ति अनन्तों सहित स्वयंभू निज भगवान।।
सर्वज्ञों की बात मान ले उर अनन्त पुरुषार्थ जगा।
मोह-राग-द्वेषादि विकारी भावों को अब त्वरित भगा।।

निज आनन्दनाथ परमात्मा की तू बात ध्यान से सुन।
यदि आसन्न भव्य है तो तू बन ले अभी मोक्ष-भाजन॥

अमृत स्वरूपी निज ज्ञायक की ही प्रतीति शिव-सुखदायी।
परज्ञेयों की जो प्रतीति है वह सदैव भव-दुखदायी॥

परज्ञेयों के जंगल में मत फँसना मेरे चेतन लाल।
अपना ज्ञायक रूप निरखना जो है पावन परम विशाल॥

दृष्टि अखण्ड बना ले अपनी मूल मार्ग पर चलता जा।
श्री जिनवाणी हृदयंगम कर मोह-राग को दलता जा॥

है अनादि से ही पर में एकत्व बुद्धि इस प्राणी की।
अहंकार ममकारमयी है मिथ्यामति अज्ञानी की॥

श्रद्धा गुण का पता नहीं है हृदय दुराग्रह से है पूर्ण।
निज स्वरूप का ज्ञान नहीं है सदा कदाग्रह से आपूर्ण॥

नामकर्म का त्वरित नाश कर शीघ्र आत्म-सुख पाना है।
अवगाहन गुण अभी प्रकट कर अगर न भव दुख पाना है॥

ॐ ह्रीं नामकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आशीर्वाद

(दोहा)

नामकर्म को क्षय करूँ, पाऊँ पद निर्वाण।
अपने ही बल से करूँ, मुक्ति-भवन निर्माण॥

इत्याशीर्वादः।

❖❖❖

पूजन क्र. ९

गोत्र कर्म विरहित श्री सिद्धपरमेष्ठी पूजन

स्थापना

(छंद - कुण्डलिया)

गोत्रकर्म को नाश कर, हुए सिद्ध भगवन्त।
अगुरुलघु गुण प्राप्त कर, हुए मुक्ति के कन्त ।।
हुए मुक्ति के कन्त अनन्तों गुण प्रकटाए।
जितने दुर्गुण थे स्वामी सब ही विघटाए।।
शुद्ध आत्मबल से प्रकटाया आत्मधर्म को।
मैं भी नाश करूँ निज बल से गोत्रकर्म को।।

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छंद - विधाता)

नीर सम्यक् हृदय लाकर भावना शुद्ध निज भाऊँ।
जन्म-मरणादि रोगों को नाशकर शान्ति सुख पाऊँ।।
गोत्र दोनों प्रकृति नाशूँ अगुरुलघु गुण सदा ध्याऊँ।
परावर्तन पंच क्षय हित सिद्ध प्रभु को सदा ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

भवातप नाश करने को आपकी शरण आया हूँ।
सहज चंदन भावनामय हृदय में आज लाया हूँ।।
गोत्र दोनों प्रकृति नाशूँ अगुरुलघु गुण सदा ध्याऊँ।
परावर्तन पंच क्षय हित सिद्ध प्रभु को सदा ध्याऊँ।।

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं नि.।

स्वपद अक्षय प्रकट कर लूँ करूँ हे नाथ ऐसा श्रम।
भेंट अक्षत करूँ उज्वल भावनामय परम उत्तम॥
गोत्र दोनों प्रकृति नाशूँ अगुरुलघु गुण सदा ध्याऊँ।
परावर्तन पंच क्षय हित सिद्ध प्रभु को सदा ध्याऊँ॥

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि.।

शील गुण पुष्प की पावन सुरभि है पूर्ण गुणकारी।
काम की व्याधि नाशूँ मैं बनूँ हे नाथ अविकारी॥
गोत्र दोनों प्रकृति नाशूँ अगुरुलघु गुण सदा ध्याऊँ।
परावर्तन पंच क्षय हित सिद्ध प्रभु को सदा ध्याऊँ॥

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि.।

क्षुधा की वेदना क्षयकर अनाहारी स्वपद पाऊँ।
भेंट नैवेद्य भावों के करूँ निज आत्मा ध्याऊँ॥
गोत्र दोनों प्रकृति नाशूँ अगुरुलघु गुण सदा ध्याऊँ।
परावर्तन पंच क्षय हित सिद्ध प्रभु को सदा ध्याऊँ॥

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।

ज्ञानमय दीप की ध्रुव ज्योति पाने को शरण आया।
घोर मिथ्यात्वतम नाशूँ यही दृढ़ ध्येय उर भाया॥
गोत्र दोनों प्रकृति नाशूँ अगुरुलघु गुण सदा ध्याऊँ।
परावर्तन पंच क्षय हित सिद्ध प्रभु को सदा ध्याऊँ॥

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.।

ध्यानमय धूप लाया निज परम महिमामयी पावन।
कर्म वसु नाश करने का मिला अवसर सु मनभावन॥
गोत्र दोनों प्रकृति नाशूँ अगुरुलघु गुण सदा ध्याऊँ।
परावर्तन पंच क्षय हित सिद्ध प्रभु को सदा ध्याऊँ॥

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।

साम्यभावी स्वफल पाने करूँ शुद्धात्म का चिन्तन।
मोक्षफल नाथ पाऊँ मैं हरूँ संसार के बंधन॥
गोत्र दोनों प्रकृति नाशूँ अगुरुलघु गुण सदा ध्याऊँ।
परावर्तन पंच क्षय हित सिद्ध प्रभु को सदा ध्याऊँ॥

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.

अर्घ्य उत्तम सजाऊँ मैं ज्ञान के गीत गाऊँ मैं।
स्वपद पाऊँ अनर्घ्य अपना लौट भव में न आऊँ मैं॥
गोत्र दोनों प्रकृति नाशूँ अगुरुलघु गुण सदा ध्याऊँ।
परावर्तन पंच क्षय हित सिद्ध प्रभु को सदा ध्याऊँ॥

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अर्घ्यावलि

(दोहा)

गोत्र कर्म की प्रकृतियाँ, ऊँच-नीच दो भेद।
शुद्ध आत्मा तो सदा, गोत्र विहीन अभेद॥

(वीरछन्द)

गोत्रकर्म की उच्च प्रकृति से होती है सुर नर पर्याय।
दोनों ही पर्याय दुखमयी शिवसुख बाधक बहु दुखदाय॥
गोत्रकर्म सम्पूर्ण नाश कर दोनों प्रकृति विनाशूँगा।
अगुरुलघुत्व स्वगुण पाऊँगा निज शुद्धात्म प्रकाशूँगा॥१॥

ॐ ह्रीं उच्चगोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

गोत्रकर्म की नीच प्रकृति तिर्यञ्च नरक दुख की दाता।
इसे नष्ट करना है मुझको यह पंचमगति की घाता॥
गोत्रकर्म सम्पूर्ण नाश कर दोनों प्रकृति विनाशूँगा।
अगुरुलघुत्व स्वगुण पाऊँगा निज शुद्धात्म प्रकाशूँगा॥२॥

ॐ ह्रीं नीचगोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

महार्घ्य

(छंद - ताटंक)

निज स्वाभाविक दशा प्राप्त करने का ही उद्यम करना।
दृष्टि द्रव्य निज पर ही रखना सकल विभाव भाव हरना॥
तुम चैतन्य ऋद्धि के स्वामी निरावरण निर्दोष त्रिकाल।
निर्विकल्प सुख के सागर हो पर से निस्पृह श्रेष्ठ विशाल॥
अब निर्मल चैतन्य भावना हुई फलवती सौख्यापूर्ण।
काललब्धि चरणों में आयी लेकर शाश्वत गुण आपूर्ण॥
ज्ञान-स्वभाव दृष्टि में लेकर केवलज्ञान प्रकट कर लो।
समयसार का सार प्राप्तकर भवसागर को क्षय कर लो॥
है चेतन चिच्चमत्कार की महिमा ही जग में उत्तम।
इसको ही पाने का पावनतम पुरुषार्थ श्रेष्ठ उद्यम॥
गोत्रकर्म क्षय करना है तो सम्यक् पथ पर आ जाओ।
दोनों गोत्र प्रकृतियाँ क्षय कर देहरहित अब हो जाओ॥

(दोहा)

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ, गोत्र कर्म हर नाथ।
निज ज्ञायक का हे प्रभो, तजूँ न पल भर साथ॥

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छंद - मानव)

मिथ्यात्व मोह का झोंका मुझको उखाड़ देता है।
मैं इससे लड़ता हूँ तो मुझको पछाड़ देता है॥
मोहादि विकारी भावों की छाया मुझको भायी।
चिर विषय-कषाय वासना मेरे अंतर में छायी॥

सद्गुरु ने मुझे जगाया तब ज्ञानभाव उर आया।
मिथ्यात्व मोह को क्षयकर मैंने समकित उपजाया॥

उत्तम स्वभाव का उपवन ही मुझको आज सुहाया।
फिर स्वपर विवेकपूर्वक मैं तो शिवपथ पर आया॥
गुण मणियाँ सहज अनन्तों स्वयमेव निकट आयी हैं।
विरुदावलियाँ सिद्धों की मैंने सविनय गायी हैं।
मैं सिद्ध बनूँगा निश्चित संदेह नहीं है मन में।
विश्वास जगा है भीतर आया हूँ निज उपवन में॥
आनन्द अतीन्द्रय धारा पायी है अन्तर्यामी।
सुख सादि-अनन्त मिला हो मानो हे मेरे स्वामी॥
अब तो मेरे अन्तर में निज ज्ञान-चेतना आयी।
उपयोग हुआ है निर्मल निज परिणति भी हर्षायी॥
ज्ञायक स्वभाव पाते ही ज्ञानाम्बुज खिला अनूठा।
मोहादि विकारी भावों का सर्व सैन्य दल रूठा॥
गगनांगन नाच रहा है आस्रव पर जय पायी है।
संवर की पावन बेला हर्षित मैंने पायी है॥
क्षय पूर्वबद्ध करने को निर्जरा नृत्य करती है।
अपनी स्वशक्ति के द्वारा चारों कषाय हरती है॥
अब मोक्षतत्त्व आया है मुझको ही वन्दन करने।
सब घाति-अघाति नाश कर कर्मों के बंधन हरने॥
अब गोत्रकर्म नाशूँगा भवदुःख सब नाश करूँगा।
गुण अगुरुलघुत्व प्राप्त कर संसार समस्त हरूँगा॥

ॐ ह्रीं गोत्रकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं नि.।

आशीर्वाद

(दोहा)

गोत्रकर्म का नाश कर, पाऊँ पद निर्वाण।
अपने ही बल से करूँ, मुक्ति-भवन निर्माण॥

इत्याशीर्वादः।

पूजन क्र. १०

अंतरायकर्म विरहित श्री सिद्धपरमेष्ठी पूजन

स्थापना

(छंद - कुण्डलिया)

अंतराय को नाशकर, हो गए सिद्धमहंत।
पाँच प्रकृतियाँ नष्ट कर, आप हुए भगवंत ॥
आप हुए भगवंत ज्ञान का आश्रय पाकर।
तीन लोक के शीश विराजे निज को ध्याकर ॥
निज को ध्याकर प्रकट किया अपने स्वभाव को।
मैं भी नाश करूँगा स्वामी अन्तराय को ॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट्।

(छंद - रोला)

जन्म-जरा-मरणादि रोग त्रय नाश करूँगा।
सहज भाव जल चरण चढ़ा भव त्रास हरूँगा ॥
अंतराय की पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्ता।
सिद्ध महान वीर्य गुणधारी संकटहर्ता ॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.।

भव-आताप विनाशक चंदन मैंने पाया।
हुआ सुनिश्चित भव का अंत निकट अब आया ॥
अंतराय की पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्ता।
सिद्ध महान वीर्य गुणधारी संकटहर्ता ॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं नि.।

उज्ज्वल अक्षत धवल ज्ञानमय लाया स्वामी।
अक्षय पद की प्राप्ति करूँगा अन्तर्यामी॥
अन्तराय की पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्ता।
सिद्ध महान वीर्य गुणधारी संकटहर्ता॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि.।

पुष्प सुगन्धित भावमयी चरणों में अर्पित।
कामबाण की पीड़ा नाशूँगा प्रभु निश्चित॥
अन्तराय की पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्ता।
सिद्ध महान वीर्य गुणधारी संकटहर्ता॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि.।

क्षुधा व्याधि हर सहज ज्ञान चरु मैं लाऊँगा।
परम तृप्ति दायक शाश्वत पद निज पाऊँगा॥
अन्तराय की पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्ता।
सिद्ध महान वीर्य गुणधारी संकटहर्ता॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।

महा-मोहतम-नाशक ज्योति दीप लाऊँगा।
स्वपर-प्रकाशक केवलज्ञान शीघ्र पाऊँगा॥
अन्तराय की पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्ता।
सिद्ध महान वीर्य गुणधारी संकटहर्ता॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.।

ध्यान-धूप की दिव्यगन्ध प्रभु उर में पायी।
वसु कर्मों को क्षय करने की बेला आयी॥
अन्तराय की पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्ता।
सिद्ध महान वीर्य गुणधारी संकटहर्ता॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।

महामोक्ष फल के दाता तुम त्रिभुवन नामी।
सहज भाव फल भेंट करूँ हे अन्तर्यामी॥
अन्तराय की पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्ता।
सिद्ध महान वीर्य गुणधारी संकटहर्ता॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.।

पद अनर्घ्य पाने का उत्तम अवसर पाया।
निज गुण अर्घ्य बना स्वामी चरणों में लाया॥
अन्तराय की पाँच प्रकृतियों के क्षयकर्ता।
सिद्ध महान वीर्य गुणधारी संकटहर्ता॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

अर्घ्यावलि

(दोहा)

अंतराय की प्रकृतियाँ, पाँचों ही बलवान।
शुक्ल-ध्यान की शक्ति से, हो जातीं अवसान॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

प्रकृति प्रथम दानांतराय करने देती है कभी न दान।
नाश प्रकृति दानांतराय को करूँ आत्मा का कल्याण॥
अन्तराय की पाँचों प्रकृति विनाशूँ करूँ आत्मकल्याण।
निज अनन्तवीर्य गुण प्रगटा पाऊँगा निज पद निर्वाण॥१॥

ॐ ह्रीं दानान्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

प्रकृति द्वितीय लाभांतराय तो लाभ नहीं होने देती।
नाश प्रकृति लाभांतराय कर आत्मा सदा लाभ लेती॥
अन्तराय की पाँचों प्रकृति विनाशूँ करूँ आत्मकल्याण।
निज अनन्तवीर्य गुण प्रकटा पाऊँगा निज पद निर्वाण॥२॥

ॐ ह्रीं लाभान्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

क्रूर प्रकृति भोगांतराय की भोग भोगने में बाधक।
इसको वह ही क्षय करता है जो होता निजात्म-साधक।।
अन्तराय की पाँचों प्रकृति विनाशूँ करूँ आत्म-कल्याण।
निज अनन्तवीर्य गुण प्रकटा पाऊँगा निज पद निर्वाण।।३।।

ॐ ह्रीं भोगान्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

उपभोगांतराय की प्रकृति सदा बाधक उपभोगों में।
इसको क्षय करने का बल है शुद्ध ज्ञान उपयोगों में।।
अन्तराय की पाँचों प्रकृति विनाशूँ करूँ आत्म-कल्याण।
निज अनन्तवीर्य गुण प्रकटा पाऊँगा निज पद निर्वाण।।४।।

ॐ ह्रीं उपभोगान्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

दुष्ट प्रकृति वीर्यांतराय की सदा आत्मबल में बाधक।
इसको वह ही क्षय करता है जो होता निजात्म साधक।।
अंतराय की पाँचों प्रकृति विनाशूँ करूँ आत्म-कल्याण।
निज अनन्तवीर्य गुण प्रकटा पाऊँगा निज पद निर्वाण।।५।।

ॐ ह्रीं वीर्यान्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

महार्घ्य

(गीत)

ज्ञान होता है तो अज्ञान नहीं होता है।
ध्यान होता है तो अपध्यान नहीं होता है।।
धर्म होता है तो अधर्म नहीं होता है।
कर्म होता है तो निष्कर्म नहीं होता है।।
सत्य होता है तो असत्य नहीं होता है।
शील होता है तो कुशील नहीं होता है।।
क्रोध होता है तो क्षमा न कभी होती है।
मान होता है तो विनय न कभी होती है।।

माया होती है तो आर्जव न कभी होता है।
लोभ होता है तो फिर शौच नहीं होता है।।
पाप होता है तो फिर पुण्य नहीं होता है।
पुण्य होता है तो फिर पाप नहीं होता है।।

दोनों होते हैं तो फिर धर्म नहीं होता है।
धर्म होता है तो पुण्य-पाप नहीं होता है।।
कर्म यह अंतराय दुखमय ही होता है।
इसके ही नाश से परिपूर्ण सौख्य होता है।।

आत्मसुख प्राप्ति में होता है यह सदा बाधक।
इसका करते विनाश होते हैं जो दृढ़ साधक।।

(दोहा)

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ, पाऊँ पद निर्वाण।
अपने ही बल से करूँ, मुक्ति-भवन निर्माण।।

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं नि.।

जयमाला

(छंद - मानव)

सुख हस्तान्तरित न होता अपना-अपना होता है।
सुख को केवल वह पाता जो सुख को ही बोता है।।
डंके की चोट कहो तुम मैं ज्ञायक परमात्मा हूँ।
निजरस को पीनेवाला मैं केवल शुद्धात्मा हूँ।।

जीवन को छंद बना लो बन्धों में नहीं बँधो तुम।
परिभाषित करो स्वयं को अमृत के घूँट पियो तुम।।
अभिव्यक्ति आत्मा की कर आत्मानुभूति सुख पाओ।
अनुभवरस सिन्धु प्राप्तिहित निज अनुभवरस बरसाओ।।

अज्ञात निमंत्रण पाकर रुकना मत बढ़ते जाना।
गुण-पुष्पों का चुम्बन कर आनन्दामृत उर लाना॥
निज ज्योति निरख ज्योतिर्मय निज अन्तर में पाओगे।
समरस में हो विमुग्ध तुम निज आतम को ध्याओगे॥

अस्तित्व तुम्हारा अपना सुरधनु सम रंग-बिरंगा।
भवरंग स्वत: क्षय होता भव भावमयी भदरंगा॥
जब अपना ध्यान करोगे तो निज में ही आओगे।
ज्ञायक स्वभाव पति होकर ध्रुव परमात्मा पाओगे॥

तुम तो हो मोक्षस्वरूपी तुमको न मुक्त होना है।
तुम बने बनाए ईश्वर तुमको अब क्या होना है॥
निजरस गंगोत्री पाकर जीवन धारा चलती है।
फिर जग की माया ममता इसको न कभी छलती है॥

क्षय अंतराय करते ही सुख की धारा मिल जाती।
मुरझायी कली हृदय की पलभर में ही खिल जाती॥
यह अंतराय दुखदायी सुख में सदैव बाधक है।
वह इसको क्षय करता है जो निज का आराधक है॥

ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जयमालापूर्णार्घ्यं नि.।

आशीर्वाद

(दोहा)

अंतराय को क्षय करूँ, पाऊँ सौख्य अपार।
आत्मेन्द्र की कृपा से, हो जाऊँ भवपार॥

इत्याशीर्वादः

अन्तिम महार्घ्य

(छंद - सरसी)

मुझको भवदुख देते आए अष्टकर्म विकराल।
कभी न इसका अन्त कर सका फँसकर माया जाल॥
निज की तो अनुभूत न भायी तो कैसे सुख पाता।
किया न परिचय शुद्धात्मा से तो कैसे दुख जाता॥

अवसर पाया समय मिला बेला आयी दुख-क्षय की।
ऋतु संयम की उत्तम पायी अष्टकर्म के जय की॥
किन्तु न मैंने अबतक भी कुछ लाभ उठाया स्वामी।
भव के दल-दल में ही फँसकर समय गँवाया नामी॥

अब पलभर भी पर परिणति के संग नहीं जाऊँगा।
निज परिणति को ससम्मान निज अन्तर में लाऊँगा॥
अष्टकर्म रज क्षय कर दूँगा ज्ञानभाव से स्वामी।
निज पुरुषार्थ जगा पाऊँगा शिवसुख अन्तर्यामी॥

(छंद - ताटंक)

रवि को रवि का दिव्य तेज पा अपना आत्मतेज परखें।
सोम चन्द्र की विमल ज्योति पा अपना ज्ञानरूप निरखें॥
मंगल सर्वोत्तम मंगल है अपना आत्मदेव मंगल।
बुध को बुद्धि विमलकर अपनी शिवसुख पाएँ परमोज्ज्वल॥

गुरु को गुरु की शरण प्राप्त कर मुक्तिमार्ग पर हम आएँ।
सतत शुक्र को धर्म श्रवण कर भव-भावों पर जय पाएँ॥
शनि को उर में धरें हर्ष से संयम की दृढ़ नींव महान।
सातों वार सतत निज चिन्तन करें आत्मा का ही ध्यान॥

उत्सर्पिणी काल में उत्तम धर्म ध्यान ही उर भाए।
अवसर्पिणी काल हो तो भी मन न हमारा अकुलाए॥

बीता काल अनन्त आज तक जो अनादि कहलाता है।
धर्म ध्यान का मिला न अवसर चेतन चेत न पाता है॥
काल नहीं बाधक स्वध्यान में मास पक्ष दिन रंच नहीं।
जब जागें हम तभी सबेरा फिर हो पाप प्रपंच नहीं॥

वर्षों की साधना व्यर्थ हो जाती यदि न भूल हो दूर।
भूल दूर होते ही होती सकल साधना शिव सुखपूर॥
अनगिन तीर्थयात्रा करके भी नहीं सफल हो पाया श्रम।
आत्मतीर्थ की यात्रा में हम अबतक हुए नहीं सक्षम॥

अब ऐसा कुछ करें कि जिससे सम्यग्दर्शन मिल जाए।
अष्टकर्म सम्पूर्ण जीत लें ज्ञानाम्बुज उर खिल जाए॥

(गीत)

शुद्ध पर्याय प्रकट करने का ही यत्न करो।
जितने गुण हैं प्रकट करने का ही प्रयत्न करो॥
ध्रुव त्रिकाली का लक्ष्य लेके आगे बढ़ जाओ।
विभावी भाव राग-द्वेष के सयत्न हरो॥
घातिया घातकी की चाल में न आना तुम।
इनको क्षय करके फिर अघातिया चारों ही हरो॥
मिला है मुक्ति-मार्ग बढ़ते चलो हे चेतन।
मुक्ति-पथ पार करके सुख सहज निष्पन्न करो॥
शुद्ध परिणाम तुम्हें अपने बल से लाना है।
पूर्ण सिद्धत्व हेतु जो बने यह यत्न करो॥

(दोहा)

महा-अर्घ्य अर्पण करूँ, पाऊँ सम्यग्ज्ञान।
अष्टकर्म सब नाशकर, पाऊँ पद नर्वाण॥

ॐ ह्रीं सर्वकर्मप्रकृतिसत्त्वविरहितानन्तज्ञान-दर्शन-वीर्य-सुख-अव्याबाधत्व-अवगाहनत्व-सूक्ष्मत्व-अगुरुलघुत्वाद्यनन्तगुणवैभवसमृद्धश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महा जयमाला

(गीत)

रंग लाओ तो ज्ञान का ही रंग लाओ तुम।
दर्शनी आत्म बना आनन्द बहुत पाओ तुम॥
अपनी परिणति का ही शृंगार तुम करते रहना।
शुद्ध अनुभव के रस से नित्य ही नहाओ तुम॥

मैल धुल जाएगा कषायों का धीरे-धीरे।
पूर्ण सिद्धत्व गुण से निज को ही सजाओ तुम॥
घातिया या अघातिया की रज न रह पाए।
बीन आनन्द प्रदाता ही नित बजाओ तुम॥
मार्ग में यदि मिलें कंटक तो तुम कुचल देना।
बिना रुके ही अपने मुक्ति-भवन जाओ तुम॥

(छंद - ताटंक)

दिव्यध्वनि अमृतवाणी का लाभ सर्व दुखनाशक है।
स्वपर-प्रकाशक परमध्यानमय प्रतिक्षण मंगलदायक है॥
जो भयभीत कर्म से होते वे ही कर्म नाशते हैं।
जो न कर्म से भय खाते हैं वे ना कर्म नाशते हैं॥

इच्छाओं के भँवरजाल में फँसा हुआ प्राणी दुखिया।
पग-पग पर पीड़ा पाता है कभी नहीं होता सुखिया॥
बहिर्मुखी बनकर जो रहता कभी नहीं सुख पाता है।
अन्तर्मुखी जीव जो होता वही आत्मसुख पाता है॥

जिसे न कोई इच्छा होती इच्छा-विजयी वह सम्राट।
जिनको इच्छाएँ होती हैं उनको होता कष्ट विराट॥
इच्छाओं का अन्त नहीं है वे आकाश समान अनन्त।
जो इच्छाएँ जय करते हैं वे ही पाते सौख्य अनन्त॥

इच्छाएँ अनन्त होती हैं इच्छारहित सुमुनि अनगार।
सागारों को धर्ममार्ग पर लाकर हो जाते भव-पार॥
गो गज अश्व रत्न राज्य भू धन सब जानो दुख के स्रोत।
एकमात्र सन्तोष महाधन परम शान्ति से ओत-प्रोत॥
इच्छाओं पर करो नियंत्रण रागादिक से लो मुख मोड़।
पावन समकित उर में लाओ निज सुखसर से नाता जोड़॥
भव तन भोगेच्छा जय करने वाले पाते पद निर्वाण।
नहीं समस्या होती फिर कुछ होते कर्म न फिर बलवान॥
नित्यानन्दमयी मंगलता कठिनाई से प्राप्त हुई।
भाव-नग्नता जागी उर में द्रव्य-नग्नता व्याप्त हुई॥
दर्शविशुद्धि भावना भाना करना अपना दृढ़ श्रद्धान।
सतत विनय सम्पन्न भाव हो तब ही होगा सम्यग्ज्ञान॥
निरतिचार हो शुद्ध शीलव्रत तुम कषायवश मत होना।
निज ज्ञानोपयोग में रहना ज्ञानाभ्यास लीन होना॥
भव तन से वैराग्य भाव हो उर संवेग भाव पावन।
शक्तिपूर्वक त्याग भावना मंगल वर्धक मन-भावन॥
शक्तिपूर्वक ही तप करना शुद्ध स्वरूप रूप संयम।
साधु समाधि हृदय में हो बनना मुनिसेवा में सक्षम॥
रोगी बाल वृद्ध मुनियों की सेवा ही है वैय्यावृत्य।
हो अरहंत-भक्ति निज उर में नहीं कषायों का हो नृत्य॥
हो आचार्य-भक्ति अन्तर में रत्नत्रय की हो उर शक्ति।
उपाध्याय मुनि की सेवा हो यह उत्तम बहुश्रुत भक्ति॥
प्रवचन-भक्ति जिनागम श्रद्धा जिन-प्रवचन का हो बहुमान।
षट् आवश्यक भाव द्रव्यमय अपरिहाणि आवश्यक जान॥
इच्छाओं का निरोध करके जिनपथ की प्रभावना हो।
साधर्मी से प्रीत सहज हो अब वात्सल्य भावना हो॥

तीर्थंकरपददायक सोलहकारण यही भावना हैं।
दर्शविशुद्धि भावना के बिन शून्य समस्त भावना हैं।।
समकितपूर्वक एक भावना भी हो तो होता कल्याण।
अष्टकर्म सब हो जाते हैं दहन प्राप्त होता निर्वाण।।

(छंद - मानव)

अन्तर्मन में हलचल हो तो उथल-पुथल होती है।
यदि ज्ञान-नीर मिल जाए तो अन्तर्मल धोती है।।
फिर ज्ञान विराजित करता दोनों हाथों से भीतर।
निज हित की बात सोचता निज चंदन लगता सुन्दर।।
मन्तव्य आत्म-अक्षत का इसको पुलकित करता है।
ज्ञातव्य विभाव भाव सब यह हर्षित हो हरता है।।
उर भेद-ज्ञान लाता है सारा मिथ्यात्व भगाकर।
लाता है शुद्ध पुष्प यह अपना पुरुषार्थ जगाकर।।
मोहाग्नि बुझाऊँ दुखमय अनुभव रस चरु के द्वारा।
अज्ञान-अग्नि नाशूँगा मैं ज्ञानदीप के द्वारा।।
कर्माग्नि बुझाऊँगा मैं ध्रुव ध्यान-धूप के बल से।
कामाग्नि बुझाऊँगा मैं प्रभु महाशील उज्ज्वल से।।
भव-अग्नि बुझाऊँगा मैं प्रभु महामोक्ष फल द्वारा।
भव-ज्वाला शान्त करूँगा अपनी स्वशक्ति के द्वारा।।
इस भाँति प्रभो पूजन कर पूजन का फल पाऊँगा।
सम्यग्दर्शन को पाकर शिवपथ पर मैं आऊँगा।।
जब पूजन हो जाएगी तो निज का ध्यान करूँगा।
सामायिक उत्तम करके समता-रस-पान करूँगा।।
बस इतना ही करना है कृतकृत्य बनूँगा स्वामी।
संसारमार्ग को क्षयकर शिवसुख पाऊँगा नामी।।
भव हलचल चंचलता तज पाना है मुझे अचलता।
शिवपथ के आगे भाती है कभी न भव चंचलता।।

माया की छाया पाकर काया पायी दुखदायी।
जड़-काया को क्षय करके पाऊँगा पद सुखदायी॥
वैज्ञानिक भेदज्ञान के मुझको भी भेद-ज्ञान दो।
अपने दोनों हाथों से प्रभु मुझको आत्मज्ञान दो॥

स्वाधीन सुखों की आशा मेरे उर में जागी है।
भवसुख की अभिलाषा अब पूरी-पूरी भागी है॥
सम्यग्दर्शन की शोभा संयम से ही होती है।
संयम की शोभा सम्यग्दर्शन से ही होती है॥

वसु कर्मों को क्षय करने का निश्चय अटल सुहाया।
इसलिए प्रभो हर्षित हो मैं शरण आपकी आया॥
बारह मासों में हे प्रभु हैं सभी मास अति उत्तम।
तत्त्वाभ्यास इनमें हो तो होते ये परमोत्तम॥

आश्विन में भेदज्ञान कर पूर्णिमा ज्ञान की पाऊँ।
कार्तिक में ज्ञानप्रभा पा क्षायिक समकित प्रकटाऊँ॥
वैराग्य सहित मगसिर में अविरति को जय कर डालूँ।
फिर पौष मास में पावन निश्चय संयम दृढ़ पालूँ॥

इस माघ मास में अब तो सम्पूर्ण प्रमाद गला दूँ।
बन पंचमहाव्रतधारी दुखमय संसार हिला दूँ॥
फागुन में होली खेलूँ ले रंग ध्यान के पावन।
खेलूँ मैं आँख-मिचौली निज परिणति से मन-भावन॥

निज चैत्र वसन्ती चिन्मय श्रेणी चढ़ने का मौसम।
पा शुक्लध्यान की बेला अविकल्प ध्यान लूँ उत्तम॥
वैशाख शिखर पर चढ़कर उर यथाख्यात प्रकटाऊँ।
चारों कषाय क्षय करके कैवल्य ज्ञान निधि पाऊँ॥

अब ज्येष्ठ मास में त्रिभुवन का ज्येष्ठ चिदेश बनूँ मैं।
घातिया चार का हर्त्ता अर्हत् परमेश बनूँ मैं॥

आषाढ़ निजानन्दी हो बन सकल ज्ञेय का ज्ञायक।
आनन्द अतीन्द्रिय सागर पाऊँ बन त्रिभुवन-नायक॥

श्रावण की हरियाली में रिम-झिम अनुभव रस बरसे।
त्रैलोक्य सकल दर्शन कर प्रतिपल प्रतिक्षण बहु हरषे॥
पा श्रेष्ठ भाद्रपद अनुपम परिपूर्ण धर्म प्रकटाऊँ।
सिद्धत्व स्वगुण को पाकर त्रैलोक्य शिखर पर जाऊँ॥

त्रय योग अभाव करूँ मैं सिद्धों की नगरी पाऊँ।
निज मुक्तिकामिनी से अब परिणय कर शिवसुख पाऊँ॥
फिर बारह मास सदा ही आनन्द सहित बीतेंगे।
सिद्धों को वन्दन कर हम अब दोषों से रीतेंगे॥

बस एक ध्येय हो अपना निर्मल स्वरूप गुणशाली।
निज ज्ञान प्राप्ति के हित हम पाएँ समकित हरियाली॥
इस हरियाली को अपने जीवन में लाना होगा।
षट् ऋतुओं के मौसम को इस बार जगाना होगा॥

विज्ञान ज्ञानघन अपना उज्ज्वल स्वभाव हम पाएँ।
ध्यानाग्नि मध्य कर्मों को ईंधनवत् त्वरित जलाएँ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरण-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीय-आयु-नाम-गोत्र-अंतराय सर्वकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो महाजयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आशीर्वाद

(दोहा)

हो जाऊँ निष्कर्म प्रभु, करूँ आत्म-कल्याण।
अष्टकर्म सब दहन कर, पाऊँ पद निर्वाण॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

❖❖❖

शान्ति-पाठ

(दोहा)

मुक्ति-मार्ग पाऊँ प्रभो, करूँ आत्म-कल्याण।
निज स्वभाव की शक्ति पा, करूँ कर्म अवसान ॥
नहीं कहीं कोई दुखी, हे प्रभु हो लव-लेश।
द्रव्यदृष्टि से सभी का, है सिद्धों सम वेश ॥
सकल जगत में शान्ति हो, सुख का हो साम्राज्य।
सब जीवों को प्राप्त हो, उनका शिवसुख राज्य ॥
परम शान्ति इच्छुक प्रभो, करता तुम्हें प्रणाम।
महा-शान्ति दो हे प्रभो, पाएँ सब ध्रुवधाम ॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

(यहाँ नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें)

क्षमापना

(छंद - सोरठा)

आप क्षमा भण्डार, क्षमा करो अपराध सब।
यह विधान सम्पूर्ण, आप कृपा से हो गया ॥
मैं अज्ञानी नाथ, भूल-चूक कर दो क्षमा।
मुझको करो सनाथ, मैं अनाथ हूँ हे प्रभो ॥
आप कृपा से नाथ, कर्म दहन कर दूँ सभी।
हो जाऊँ निष्कर्म, निज पुरुषार्थ स्वशक्ति से ॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

जाप्यमंत्र – ॐ ह्रीं अष्टकर्मविरहितश्रीसिद्धपरमेष्ठिभ्यो नमः

भारत में उत्तरप्रदेश प्रान्त की हृदयस्थली अलीगढ़ में निर्मित २१वीं शती का विशुद्ध जिनायतन सङ्कुल एवं समाजसेवा का उत्कृष्ट संस्थान

तीर्थधाम मङ्गलायतन

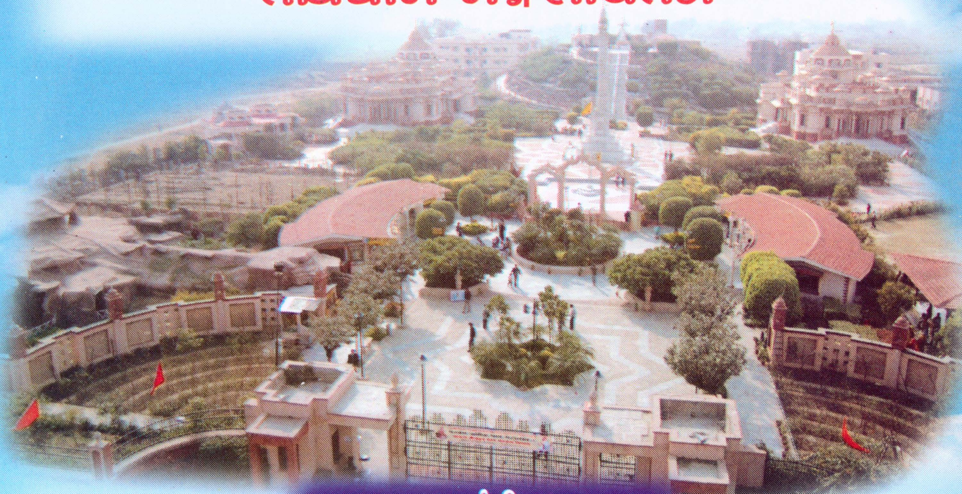

प्रमुख दर्शनीय स्थल

1. कृत्रिम कैलाशपर्वत पर भगवान आदिनाथ मन्दिर एवं चौबीस तीर्थङ्करों की निर्वाणस्थलियाँ - कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर, गिरनारगिर, चम्पापुरी, पावापुरी एवं सोनागिरी व स्वर्णपुरी सोनगढ़ की विधिपूर्वक स्थापनाओं के दर्शन
2. भगवान महावीर मन्दिर
3. भगवान बाहुबली मन्दिर
4. पण्डित दौलतराम जिनवाणी मन्दिर एवं जिनवाणी संरक्षण केन्द्र
5. आचार्य समन्तभद्र आत्मचिन्तन केन्द्र
6. धन्य मुनिदशा (दिगम्बर मुनिराजों की दशा एवं चर्या)
7. आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप एवं शोध संस्थान
8. भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट

अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (हाथरस) उत्तरप्रदेश

email : pawanjain@mangalayatan.com; info@mangalayatan.com

website : www.mangalayatan.com

सिद्धपरमेष्ठी विधान